




डॉ. ज़ाकिर हुसैन - एक सचित्र जीवनी
Dr. Zakir Husain-A Pictorial Biography





Digitized by the Internet Archive
in 2018 with funding from
Public.Resource.Org

<https://archive.org/details/drzakirhusainapi00drza>

डॉ. ज़ाकिर हुसैन - एक सचित्र जीवनी

Dr. Zakir Husain-A Pictorial Biography



भारत का एक महान सपूत
A great son of India

डॉ. ज़ाकिर हुसैन - एक सचित्र जीवनी
Dr. Zakir Husain-A Pictorial Biography

मूल पाठ

डॉ. जफ़र अहमद निज़ामी

Text

Dr. Zafar Ahmad Nizami

अनुवादक

चिन्तामणि व्यास

Translator

Chintamani Vyas



राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली
National Museum, New Delhi

© राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

अभिन्यास व रूपसज्जा : कुशल पाल

मूल वितरक: प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली

© National Museum, New Delhi

Layout & Design: Kushal Pal

Sole Distributors: Publications Division, Patiala House, New Delhi.



पहला प्रकाशन: 1990

First Published: 1990

मूल्य: 170.00 रुपये (एक सौ सत्तर रुपये)

Price: Rs. 170.00

(Rupees one hundred seventy)

राष्ट्रीय संग्रहालय, जनपथ, नई दिल्ली-110011, द्वारा प्रकाशित

टाटा प्रेस, बम्बई द्वारा मुद्रित

Published by the National Museum, Janpath, New Delhi-110011

Printed at Tata Press, Bombay

विषय-सूची Contents

अभिस्वीकृति Acknowledgements	vi
प्राक्कथन Foreword	vii
डॉ. ज़ाकिर हुसैन: एक जीवनी Dr. Zakir Husain: A Life	1-36
डॉ. ज़ाकिर हुसैन - छाया चित्रों के माध्यम से Dr. Zakir Husain- Through the Lens	37-162

आभार

मैं राष्ट्रीय संग्रहालय, भारत सरकार नई दिल्ली के उन अधिकारियों के प्रति सच्चा आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन की इस सचित्र जीवनी के प्रकाशन में अपना योगदान दिया है। मैं, विशेषकर, राष्ट्रीय संग्रहालय के महानिदेशक, डॉ. लक्ष्मी प्रसाद सिहारे का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे यह कार्य सौंपा और इसको पूरा करने में हर संभव सहायता दी। मैं, श्री रघुराज सिंह चौहान, संग्रहापाल (प्रकाशन) का आभारी हूँ जिन्होंने अत्यन्त सावधानी से इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य का निरीक्षण किया है। मैं अभिन्यास कलाकार, श्री कुशलपाल का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस पुस्तक का अभिन्यास किया है। मैं आभारी हूँ प्रकाशन अधिकारी, श्री सतीश बहादुर का जिन्होंने इस पुस्तक के प्रूफ पढ़कर इसकी त्रुटियों को कम किया और इसको स्तरता प्रदान की। इसी प्रकार मैं हिन्दी अधिकारी श्री सुन्दर लाल श्रीवास्तव का आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के हिन्दी संस्करण को प्रस्तुत करने योग्य बनाने में तथा छायाचित्रों के हिन्दी शीर्षक देने में कठिन परिश्रम किया है। डॉ. ज़ाकिर हुसैन स्मारक संग्रहालय के अभिरक्षक श्री समीउद्दीन इस पुस्तक की तैयारी में आरंभ से अंत तक शामिल रहे हैं और इस कार्य को सफल बनाने में उन्होंने सच्चे दिल से प्रयत्न किए हैं, मैं उनका आभारी हूँ। मैं टाटा प्रेस के श्री अशोक गुप्ता के प्रकाशन संबंधी प्रयासों के लिए भी उनका आभार प्रकट करता हूँ।

एकेडेमिक स्टाफ कालेज
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली-110025

डॉ. ज़फर अहमद निज़ामी
निदेशक

Acknowledgements

I shall be failing in my duty if I do not express my sincere gratitude to the members of the Staff of the National Museum, Government of India, New Delhi, who assisted me in bringing out this pictorial biography of the late President Dr. Zakir Husain. I am, particularly, indebted to Dr. Laxmi P. Sihare, Director General, National Museum who assigned this work to me and extended all the help in its completion. I am grateful to Shri Raghuraj Singh Chauhan, Keeper Publications, who meticulously supervised the printing of this volume. Shri Kushal Pal the Layout Artist was responsible for designing the book for which he deserves my thanks. I am grateful to Shri Satish Bahadur, Production Officer, who minimised the errors by going through the proofs and made the volume up to the mark. Equally thankful I am to Shri S.L. Srivastava, Hindi Officer, who put in a lot of labour in making the Hindi version presentable and giving Hindi captions to the photographs. Shri Samiuddin, Curator, Dr. Zakir Husain Memorial Museum, New Delhi, remained involved in the preparation of the volume from beginning to the end and made sincere efforts to make this venture a success. My sincere thanks to him. Lastly, I would like to appreciate the efforts put in by Shri Ashok Gupta of Tata Press, Bombay in the production of this publication.

Academic Staff College
Jamia Millia Islamia
New Delhi-110025

Dr. Zafar Ahmad Nizami
Director

महानिदेशक का प्राक्कथन

डा. ज़ाकिर हुसैन संग्रहालय, भारत के स्व. राष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन के प्रति राष्ट्रीय श्रद्धांजलि के रूप में 1976 में स्थापित किया गया था। इस संग्रहालय की प्रशासनिक देखरेख राष्ट्रीय संग्रहालय करता है। यहां पर जो वस्तुएं संगृहीत हैं उनमें भूवैज्ञानिक नमूने, पाण्डुलिपियां जिनमें पवित्र कुरान भी है, रंग चित्र, छायाचित्र, पुराभिलेकीय सामग्री और ज़ाकिर साहब की निजी वस्तुएं-पोशाक, उनकी उपाधियां, उनको और उनके द्वारा लिखे गए पत्र तथा भारत रत्न की सर्वोच्च उपाधि भी सम्मिलित हैं।

डा. ज़ाकिर हुसैन सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् थे और शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान भलीभांति विदित है, तथापि उनकी अभिरुचियां बेशक परिवर्ती और गंभीर थीं और उनका व्यक्तित्व वस्तुतः बहुमुखी था — जिसका परिचय संग्रहालय में रखे प्रदर्शों पर एक नज़र मात्र डालकर पाया जा सकता है।

आम तौर पर जीवन चरित्र लिखते समय, जीवनी लेखक पाठ सामग्री पर ही ज़ोर देते हैं, फिर भी, हाल में यह महसूस किया गया है कि सचित्र जीवनी से भी समान रूप से आवश्यक प्रयोजन पूरा हो जाता है। इस सचित्र जीवनी में प्रस्तुत छायाचित्र विभिन्न प्रामाणिक स्रोतों से लिए गए हैं; और छायाचित्रों के चयन में तथा इस पुस्तक को तैयार करने में श्री खुर्शीद आलम खान से प्राप्त मार्गदर्शन से प्रचुर सहायता मिली है। प्रोफ़ेसर निज़ामी ने मूल पाठ लिखा है तथा छायाचित्रों को पहचानने आदि से संबंधित कार्य का पर्यवेक्षण किया है। हम उन दोनों के अत्यधिक आभारी हैं।

हिन्दी अनुवाद श्री चिन्तामणि व्यास ने किया है; यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया गया है कि अनुवाद सरल और मूल पाठ के अनुरूप हो।

डा. ज़ाकिर हुसैन, वास्तव में राष्ट्रवादी, शिक्षाविद् और सच्चे अर्थों में प्रकाण्ड विद्वान् थे। आशा है यह सचित्र जीवनी उनके लिए एक और उपयुक्त श्रद्धांजलि साबित होगी।

राष्ट्रीय संग्रहालय और ज़ाकिर हुसैन संग्रहालय के कर्मचारियों का प्रयत्न सराहनीय है। हमें विश्वास है कि सचित्र जीवनी भावी पीढ़ी को अनुप्राणित और प्रेरित करेगी।

28-2-90

लक्ष्मी प्रसाद सिहारे

DIRECTOR GENERAL'S FOREWORD

Established in 1976, the Zakir Husain Museum is administered by the National Museum. It was set up as a national tribute to the late President of India; and its collection consists of items ranging from geological specimens, manuscripts including the Holy **Quran**, paintings, photographs, archival material and, of course, the belongings of Zakir Sahib - his dress, his degrees, letters written to and by him and the most coveted award the **Bharat Ratna**.

Dr. Zakir Husain was a well known educationist and his contribution to that field has been well recognised; however, his interests were rather varied and profound, and he had a genuine multi-faceted personality—an idea of which can be gathered from a mere glance at the exhibits in the collection of the Museum.

Normally, while writing biographies, the biographer lays emphasis on textual material; however, of late, it is realised that the pictorial biographies serve an equally important purpose. Photographs reproduced in this pictorial biography have been obtained from various authentic sources; and the guidance received from Shri Khurshid Alam Khan in the selection of photographs and in preparation of this book has been of immense help. Prof. Nizami wrote the text and supervised the identification of pictures, etc. We are deeply grateful to both of them.

The Hindi translation was done by Shri Chintamani Vyas; every effort has been made to ensure that the translation is both simple and nearer to the original text.

Dr. Zakir Husain was, indeed, a nationalist, an educationist and a luminary in the true sense, and it is hoped that this pictorial biography would prove to be another befitting tribute to him.

The staff of the National Museum and that of the Zakir Husain Museum deserve deep appreciation. We sincerely hope that this pictorial biography would inspire and motivate the coming generation.

28.2.1990

L.P. Sihare

डॉ. ज़ाकिर हुसैन : सचित्र जीवनी

डा. ज़ाकिर हुसैन की वंश परम्परा कायमगंज नामक स्थान से जुड़ी रही है, जो उत्तर प्रदेश के फ़र्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है। इसे सन् 1713 में पठान सरदार मुहम्मद खां बंगश ने अपने पुत्र कायम खां के नाम पर बसाया था। यहां मुख्य रूप से पठान रहते हैं जिनकी एक समय प्रमुख वृत्ति सिपहगीरी थी। ऐसे ही प्रारंभिक वाशिंग्टों में एक थे पठान हुसैन खां, जिन्हें सम्मानपूर्वक *मदाह अखून* अथवा श्रद्धेय शिक्षक भी कहते थे। वह इस कस्बे में आकर बस गए। इनके पुत्र अहमद हुसैन, पौत्र मुहम्मद हुसैन तथा प्रपौत्र गुलाम हुसैन सभी प्रसिद्ध योद्धा थे।

गुलाम हुसैन के पुत्र फिदा हुसैन पूर्णतः भिन्न स्वभाव के थे। उनको अपने पुरखों की पुरानी सैनिक रिवायतों में कोई रुचि नहीं थी। 22 वर्ष की आयु में वे सन् 1888 में जीवन यापन के नये रास्ते की खोज में दक्कन में जा बसे। आरंभ में उन्होंने व्यापार का सहारा लिया, तत्पश्चात् औरंगाबाद में उन्होंने विधि व्यवसाय को अपनाया। उन्होंने एक प्रकाशन संस्थान भी खोला और वहां से विधि पत्रिका *आईने दक्कन* प्रकाशित की। अन्त में सन् 1892 में वे हैदराबाद में जाकर बसे और उन्होंने वहाँ पर वकालत से तथा विधिशास्त्र की पुस्तकों के प्रकाशन से बहुत धन अर्जित किया। उन्होंने बेगम बाज़ार में एक भव्य भवन का निर्माण कराया। यहीं पर उनके सात पुत्रों में से तीसरे पुत्र ज़ाकिर हुसैन का 8 फरवरी 1897 को जन्म हुआ।

लाड़ दुलार के वातावरण में पले ज़ाकिर हुसैन की प्रारम्भिक शिक्षा माता-पिता के संरक्षण में घर पर ही हुई, परन्तु 1907 में फिदा हुसैन का असामयिक निधन हो जाने के कारण इसमें विध्न आ पड़ा। उस समय ज़ाकिर हुसैन की आयु मात्र 9 वर्ष की थी।

इस दुःखद घटना ने इस परिवार को हैदराबाद छोड़ अपने पूर्वजों के स्थान कायमगंज लौटने पर बाध्य कर दिया। इसके परिणामस्वरूप ज़ाकिर हुसैन की शिक्षादीक्षा का दायित्व इनकी माता नाज़नीन बेगम पर आ पड़ा जिन्होंने यथासंभव सभी बच्चों के लिए उच्च शिक्षा का प्रबंध किया, जिनमें प्रथम दो, मुज़फ़र हुसैन और आबिद हुसैन भी थे। परन्तु इन दोनों का क्षय रोग के कारण निधन हो गया। ज़ाकिर हुसैन का बच्चों में तीसरा स्थान था। ज़ाहिद और ज़फ़र हुसैन चौथे और पांचवे स्थान पर थे जो युवावस्था में ही असाध्य क्षय रोग का शिकार हो गए। यूसुफ़ हुसैन और मुहम्मद हुसैन ने, जिन्हें छठा और सातवां स्थान प्राप्त था, शिक्षा के क्षेत्र में यथोचित प्रतिष्ठा अर्जित की।

युवा ज़ाकिर हुसैन पर नाज़नीन बेगम के बहुमुखी व्यक्तित्व ने अमिट प्रभाव डाला, जो नारी सद्गुण की खान थीं। उन्होंने डा. ज़ाकिर हुसैन को शिष्टाचार, आज्ञाकारिता और बड़ों का सत्कार करने जैसे गुणों की शिक्षा दी। बाद में ज़ाकिर हुसैन ने अनुभव किया कि उनकी माता के व्यक्तित्व ने ही उन्हें सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता के साथ जाति, रंग या धर्म पर विचार किए बिना अपने सहयोगियों के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराया था। उनके इन विचारों में निष्पक्षता तब और अधिक प्रबल हुई, जब शाह तालिब हुसैन मुज़ीब के शिष्य, यायावर सूफ़ी संत हसन शाह से उनका सम्पर्क हुआ जो आध्यात्मिकता के लिए विश्व में सम्मानित किए जाते थे। उनसे उन्होंने मर्यादित श्रम के गुणों को आत्मसात् किया, और उदारता के लक्षणों तथा उच्च विचारों के साथ सामान्य जीवन व्यतीत करने का बोध प्राप्त किया।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर ज़ाकिर हुसैन ने इटावा (उ.प्र.) में इस्लामिया हाई स्कूल की पांचवी कक्षा में प्रवेश किया। इस संस्थान की स्थापना सर सैयद अहमद के साथी मौलवी बशीर अहमद ने की थी। यहीं पर ज़ाकिर हुसैन की भेंट राष्ट्रीयता की भावना रखने वाले प्रधानाचार्य सैयद अलताफ हुसैन जैसे अध्यापकों से हुई जिन्होंने उन्हें देश भक्ति तथा राष्ट्र के प्रति निष्ठा का पाठ पढ़ाया। कक्षा उपस्थिति के साथ ही भाषण तथा निबंध प्रतियोगिताओं तथा अन्य शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेकर उन्होंने अपने अथक प्रयास से अनेक पुरस्कार भी प्राप्त किए। तत्कालीन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर अपने अध्यापकों से वाद विवाद कर उन्होंने स्वयं को निरन्तर देश विदेश की गतिविधियों से जोड़े रखा। इस समय तक उनके हृदय में इस्लामिक देशों के भविष्य के विषय में, विशेषकर बल्कान युद्धों के कारण तुर्की के भविष्य के लिए अधिक चिन्ता रहती थी जो उन दिनों *खिलाफ़त* का केन्द्र था। उन्होंने अपने सहपाठियों को 'दि पायनियर' के माध्यम से युद्ध के मोर्चे पर हो रही गतिविधियों के समाचारों से निरन्तर अवगत कराया। इस मानसिक वेदना से त्रस्त युवा अवस्था में उन्होंने हर जुमे की नमाज़ के पश्चात् मस्जिद में भाषण दिए और तुर्की में हो रही त्रासदी से जूझने हेतु धन संग्रह किया। यह उनकी इस्लाम के खलीफा के अवसान और तुर्की के प्रति

राजनैतिक शैतानी से संबंधित न्यायसंगत रोष की प्रतिक्रिया ही थी। ज़ाकिर हुसैन में देश भक्ति के उत्साह को मौलाना अबुल कलाम आजाद और मुहम्मद अली के लेखों ने और उत्तेजित किया जिन्होंने भारतीय मुसलमानों में अपनी प्रमुख पत्रिकाओं अल-हिलाल और दि कामरेड के माध्यम से नियमित अभियान छेड़ रखा था।

ज़ाकिर हुसैन लगभग चौदह वर्ष के ही थे जब उनकी माता तथा परिवार के अनेक सदस्यों का महामारी के प्रकोप से निधन हो गया। इस प्रकोप ने सन् 1911 में देश भर में त्राहि त्राहि मचा दी थी। यह भयंकर झंझावात एक सदाचारी को हिला देने के लिए काफी था। परन्तु युवा ज़ाकिर हुसैन ने सोचा, “त्रासदी का प्रकोप हटने दो” और विचारमग्न हो गए। एक सच्चे पठान की भांति उन्होंने संयत हो अपनी शिक्षा अनवरत जारी रखी।

सन् 1913 में सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने साहित्यिक विषयों में श्रेष्ठता के साथ अच्छे अंकों में हाई स्कूल परीक्षा पास की। इटावा में अध्ययन समाप्त कर उन्होंने अलीगढ़ के मुहम्मदन एंग्लो ओरिएन्टल कालेज से प्री-मेडिकल जीव विज्ञान विषय के साथ इन्टरमीडियेट परीक्षा भी पास की ताकि वे मेडिकल में प्रवेश पा सकें और चिकित्सा व्यवसाय अपना सकें... क्योंकि उनका इस ओर हार्दिक लगाव था। इस उद्देश्य पूर्ति हेतु उन्होंने क्रिस्चियन कालेज, लखनऊ में बी.एस.सी. में प्रवेश लिया। जब वे रसायन शास्त्र की प्राथमिक विज्ञान परीक्षा की तैयारी कर रहे थे तब उनका स्वास्थ्य इतना खराब हो गया कि वे एक वर्ष तक अध्ययन से वंचित रहे। इस आघात से बाध्य होकर उन्हें आर्ट्स विषय लेकर मुहम्मदन एंग्लो ओरिएन्टल कालेज में पुनः प्रवेश लेना पड़ा। यह कालेज उन दिनों इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अन्तर्गत था।

ज़ाकिर हुसैन विद्यार्थियों तथा अध्यापकों में एक समान लोकप्रिय थे। वे विद्यार्थी परिषद के उपाध्यक्ष चुने गए। उन्होंने कालेज की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में रुचिपूर्वक भाग लिया और पुरस्कारों से सम्मानित हुए। उन्होंने वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में अपने वाक् कौशल के लिए हेराल्ड काक्स और केम्बरजि के इनाम भी जीते, जो उनके समय में श्रेष्ठ और सर्वोच्च कहे जाते थे।

सन् 1918 में दर्शनशास्त्र, अंग्रेजी साहित्य और अर्थशास्त्र विषयों के साथ बी.ए. पास करने के पश्चात् उन्होंने एल.एल.बी. के साथ एम.ए. में अर्थशास्त्र के विषय का चयन किया। इसी बीच कालेज में उनकी उप-व्याख्याता के पद पर नियुक्ति हो गई। जब वे बी.ए. के छात्र थे तभी उनका शाहजहांबानों से विवाह हो गया जिन्होंने आने वाले समय में सफल जीवन संगिनी की भूमिका निभाई और जीवन में दुःख-सुख की सांझीदार बनी रहीं।

प्रथम महायुद्ध के बाद देश में राजनैतिक आन्दोलन तेजी से उभरने लगा था। युद्ध में विजय प्राप्ति के पश्चात् अंग्रेजों ने दमन की नीति को और भी तीव्र कर दिया था। रौलट ऐक्ट के विरुद्ध जन आन्दोलन के परिणामस्वरूप पंजाब में अकथनीय अत्याचार हुए। उसके बाद खिलाफत असहयोग आन्दोलन से समस्त देश में आक्रोश की लहर चल पड़ी थी। यही वह समय था, जब गांधी जी ने अपने देशवासियों को एक संदेश में अंग्रेजों के प्रति असहयोग करने का आह्वान किया। अहिंसा और असहयोग कार्यक्रम के विषय में विवरण देते हुए उन्होंने विद्यार्थियों से उन विद्यालयों को छोड़ देने के लिए कहा जो सरकार के स्वामित्व में या उसके द्वारा मान्यता प्राप्त या अनुदान प्राप्त थे और आग्रह किया कि उन्हें इनके स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करनी है। अली बंधुओं के साथ अलीगढ़ जाकर उन्होंने मुहम्मदन एंग्लो ओरिएन्टल कालेज के विद्यार्थियों को संबोधित किया और कहा कि उन्हें इस संस्था का त्याग कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेना चाहिए। इसके पश्चात् अली बन्धु तथा अन्य नेताओं ने फिर वहां जाकर उसी आह्वान को दुहराया। जबकि दूसरे लोग घबरा रहे थे, ज़ाकिर हुसैन ने उनकी इच्छा के अनुरूप उत्तर दिया। कालेज के प्रधानाचार्य ने उन्हें मनाने का निरर्थक प्रयास किया और यहां तक लालच दिया कि यदि वे अपना इरादा बदल दें तो उन्हें उप-जिलाधीश के पद पर नियुक्त कर दिया जाएगा। परन्तु ज़ाकिर हुसैन को सरकारी पद के प्रलोभन की तुलना में मातृभूमि की पुकार अधिक रुचिकर लगी। उनके ही शब्दों में :

“मेरे जीवन में अंतरात्मा का यह प्रथम निर्णय था। संभवतः मात्र एक निर्णय जो मैंने लिया। मेरा समस्त भावी जीवन इसी से प्रभावित रहा।”

इस प्रकार उन्होंने लगभग तीन सौ विद्यार्थियों के साथ मुहम्मदन एंग्लो ओरिएन्टल कालेज का बहिष्कार कर जामिया मिल्लिया इस्लामिया के रूप में राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस संस्था का उद्घाटन देवबंद के शेख-उल-हिन्द, मौलाना महमूद हसन ने 29 अक्टूबर 1920 को अलीगढ़ में किया।

हकीम अजमल खां जामिया मिल्लिया इस्लामिया के प्रथम अमीर-ए-जामिया (कुलाधिपति) नियुक्त हुए जो सन् 1927 तक जीवन पर्यन्त पदासीन रहे। मौलाना मुहम्मद अली इसके प्रथम शेख-उल-जामिया (कुलपति) मनोनीत हुए। इनके कुछ समय उपरान्त अब्दुल मजीद ख्वाजा कुलपति मनोनीत हुए क्योंकि मौलाना मुहम्मद अली को उनकी राष्ट्रीय गतिविधियों के कारण नज़रबंद कर दिया गया था। ज़ाकिर हुसैन शिक्षण परिवार के सदस्य होने के साथ ही कार्यकारिणी समिति तथा विद्या परिषद के सदस्य हो

गए। जामिया के प्रकाशन भी उन्हीं के अधीन थे। सन् 1922 में उच्च शिक्षा हेतु जर्मनी जाने तक वे इन सब पदों पर कार्यरत रहे। वास्तव में भावी शिक्षा और शोध कार्य के लिए उनके मित्र के.ए. हमीद ने विदेश जाने के लिए उनको प्रेरित किया था।

ज़ाकिर हुसैन के पास इंग्लैण्ड जाने का ही वैध पासपोर्ट था। उन्होंने जनवरी, 1922 में प्रस्थान किया परन्तु बर्तानिया न जाकर वे रास्ते में ट्राईस्ट बंदरगाह पर ही उतर गए और टूरिस्ट पारपत्र के सहारे आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी पहुंचे। श्रीमती सरोजिनी नायडू के भाई वीरिन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के सुझाव पर उन्होंने जर्मन भाषा का अध्ययन प्रारंभ किया और अंततः बर्लिन विश्वविद्यालय में शोधार्थी के रूप में अपने को पंजीकृत कराया।

जर्मनी में ज़ाकिर हुसैन ने मुहम्मद मुजीब और आबिद हुसैन से आजीवन मित्रता स्थापित कर उनसे भारत लौट कर जामिया की सेवा करने का आग्रह किया। इसी प्रकार उनकी मैत्री कुमारी गर्दा फिलिप्सबार्न से हुई जिन्होंने जामिया की सेवा करने का संकल्प लिया। बाद में जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि आर्थिक संकट के कारण जामिया बंद होने के कगार पर खड़ी है तो ज़ाकिर हुसैन ने हकीम अजमल खां को इन मार्मिक शब्दों में एक तार भेजा :

“मैं और मेरे कुछ मित्र जामिया के लिए आजीवन सेवा करने को तैयार हैं। हम लोगों के पहुंचने तक जामिया बन्द न होने पाए।”

इस संदेश से जामिया के भूतपूर्व विद्यार्थियों में बिजली की लहर सी दौड़ गई और उन्होंने हकीम साहब से भेंट कर उनसे निवेदन किया कि ज़ाकिर हुसैन के विदेश से लौटने तक जामिया को बंद न किया जाए। इससे हकीम साहब अति प्रभावित हुए। जामिया को यथावत रखते समय इसमें यह नवीनता अवश्य आई कि इस संस्था का सुचारू रूप से संचालन करने की दृष्टि से इसे अलीगढ़ से दिल्ली ले जाया गया जहां हकीम साहब इसकी देखभाल सुलभता से कर सकें।

बाद में सन् 1925 में जब हकीम अजमल खां और डा. एम.ए. अन्सारी यूरोपीय देशों के भ्रमण पर थे तब ज़ाकिर हुसैन ने उनसे पेरिस में भेंटकर अपनी और अपने मित्रों द्वारा ली गई प्रतिज्ञा का स्मरण कराया कि वे स्वदेश लौटने पर जामिया को अपनी सेवाएं अर्पित करेंगे। उन्होंने आबिद हुसैन, एम. मुजीब, बर्कत अली कुरैशी और के.ए. हमीद को भी हकीम साहब और डा. अन्सारी के सामने यह आश्वासन पुनः दुहराने के लिए भेजा कि वे अपने पूर्व निर्णय के अनुसार जामिया की सेवा करेंगे। ज़ाकिर हुसैन उनके साथ न जा सके क्योंकि वे उस समय परीक्षाओं की तैयारी में व्यस्त थे। तदनुसार ये चारों समर्पित भारतीय युवक वियाना पहुंचे जहां हकीम साहब और डा. अन्सारी उस समय ठहरे हुए थे। दोनों नेता इस बात से अति प्रसन्न हुए कि स्वदेश से इतनी दूर होते हुए भी इन व्यक्तियों में एक टूटती हुई संस्था के प्रति अदम्य सेवा भावना विद्यमान थी।

तीन वर्ष की अवधि से कुछ अधिक समय तक ज़ाकिर हुसैन जर्मनी में रहे जहां उन्होंने जर्मन भाषा में प्रवीणता अर्जित कर जर्मन इतिहास, साहित्य तथा संस्कृति का गहन अध्ययन किया। उन्हें ‘दि एसोसियेशन आफ इण्डियन्स इन सेन्ट्रल यूरोप’ का अध्यक्ष चुना गया और इस प्रतिष्ठान से उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समर्थन हेतु वहां की जनता में सद्भावना जागृत की। उन्होंने जर्मन भाषा में ‘दि मेसेज आफ महात्मा गांधी’ शीर्षक पुस्तक भी प्रकाशित की, जिसमें ‘यंग इण्डिया’ में प्रकाशित लेखों का संग्रह था। इस पुस्तक का प्राक्कथन उन्होंने ही लिखा था। वहां रहते हुए उन्होंने जर्मन समाचारपत्रों के लिए अनेक लेख लिखे। एक बार जब वे डेनमार्क और स्वीडन की यात्रा पर थे तब उन्हें पता चला कि जो धनराशि उनके पास थी इस यात्रा के दौरान प्रायः समाप्त हो चुकी थी। ज़ाकिर हुसैन ने इस वित्तीय संकट से उबरने के लिए एक स्थानीय समाचार पत्र में लेखक के छविचित्र के साथ महात्मा गांधी पर एक लेख प्रकाशित कराया जिससे उन्हें उपयुक्त धनराशि प्राप्त हुई जो उनके जर्मनी लौट जाने के लिए पर्याप्त थी।

उन्होंने उर्दू के अमर शायर गालिब के दीवान को सुन्दर लघु आकार में मुद्रित कराया और इसी प्रकार दीवान-ए-शैदा का मुद्रण कराया जो हकीम अजमल खां की कविताओं का संग्रह था, जिसे हकीम साहब शैदा उपनाम से लिखा करते थे। महात्मा गांधी के पदचिन्हों पर चलते हुए और स्वदेशी की भावना को जीवंत बनाए रखने के लिए अपने बर्लिन प्रवास के समय भी वे प्रतिदिन निश्चित मात्रा में चर्खें पर सूत काता करते थे।

ज़ाकिर हुसैन अनेक जर्मन विद्वानों एवं प्रमुख भारतवेत्ता व्यक्तियों के निकट संपर्क में आये जिनका उन पर अमित प्रभाव पड़ा। उन्हें वार्नर सोमवार्ट एवं मैक्स सेरिंग जैसे प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों का शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिन्होंने उनके आर्थिक विचारों को रूपायित किया। प्रसिद्ध शिक्षाविद् जार्ज कर्शनस्टेनर और एडवर्ड स्पेंगर ने उनकी शिक्षा के बारे में उनके विचारों को दिशा प्रदान की। उन्होंने अनेक जर्मन विद्वानों तथा संगीतज्ञों से भी घनिष्ठ मित्रता स्थापित की थी। उन्होंने ‘दि अग्रोरियन पालिसी आफ ब्रिटिश इन इंडिया’ पर शोध जारी रखा और इस हेतु इण्डिया आफिस लायब्रेरी और ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन से प्रचुर मात्रा में सामग्री एकत्रित की। उन्होंने शोध पुस्तक में सफलतापूर्वक विश्लेषण कर तीखी प्रतिक्रिया के साथ निष्कर्ष निकाला कि भारत में गरीबी और उपनिवेशवाद ही देश की दुर्बलता के कारण थे। उन्होंने संभावना व्यक्त की कि भारत में मूलतः एक नवीन पूंजीवादी

क्रांति होगी जिसके फलस्वरूप एक नये शोषक वर्ग का उदय होगा जो उपनिवेशवादी शासकों को पदच्युत करेगा। अपने उपसंहार में उन्होंने लिखा :

“गहन अध्ययन करने पर पता चलता है कि विशेष अधिकारी वर्ग का आन्तरिक प्रयास था कि दूसरों को धकेल कर गोरी अफ़सरशाही के स्थान पर काली अफ़सरशाही को लाया जाए। यह कहना सरल नहीं कि जनता का इनके शासन में भला होगा, अथवा नहीं। स्वतंत्र भारत कभी भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि कोई वर्ग दूसरे वर्ग के श्रम का आनन्द उठाए तथा अपनी ओर से अंशदान किए बिना समाज पर निर्भर रहे।”

उनके शोधकार्य को विश्वव्यापी स्तर पर सराहा गया तथा 15 जनवरी सन् 1926 को उन्हें बर्लिन विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया। अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेने के पश्चात् उन्होंने उस देश से प्रस्थान करने का निश्चय किया जहां वे तीन वर्ष पूर्व आये थे तथा सौहार्दपूर्ण वातावरण में रहे थे। इंडिया एण्ड जर्मनी पर एक भाषण में इस तथ्य की पुष्टि करते हुए उन्होंने तकनीकी क्षेत्र में जर्मनी के सक्षम होने की प्रशंसा की। उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों का भारत के प्रति सामान्य लगाव तथा भारतीय विद्यार्थियों के प्रति विशेष लगाव के लिए आभार व्यक्त किया। इस अवसर पर उन्होंने भविष्यवक्ता के रूप में घोषणा की :

“मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं होगा यदि आज यहां उपस्थित भारतीय युवकों में से कोई युवक एक न एक दिन अपने देश का प्रसिद्ध सपूत बने।”

वे रंचमात्र भी अनुभव नहीं कर सके कि यह युवक कोई अन्य नहीं बल्कि स्वयं जाकिर हुसैन ही थे।

अपने पूर्व निश्चय पर दृढ़, जाकिर हुसैन अपने साथियों, एम. मुजीब और डा. आबिद हुसैन, जिन्होंने भारत लौटने पर जामिया की सेवा करने का संकल्प किया था, के साथ फरवरी 1926 में स्वदेश लौटे। जामिया की अस्थिर परिस्थिति देख उन्हें अति दुःख हुआ। यह कुछ भवनों वाली एक छोटी सी संस्था थी। न तो इसके पास पर्याप्त धन ही था और न ही इसे जनता का सहयोग प्राप्त था। किसी प्रकार हकीम अजमल खां इसे जीवित रखे हुए थे परन्तु इसका भविष्य अधर में लटका हुआ था। जाकिर साहब ने इस चुनौती को स्वीकार कर उत्साह से उस माध्यम को पकड़ा, जिससे इसकी दशा सुधर सके। अब यहां से आगे जाकिर हुसैन की जीवन गाथा जामिया के जीवन-इतिहास से जुड़ गई।

उनके शेखुल-जामिया (कुलपति) के पदभार को ग्रहण करने के साथ डा. आबिद हुसैन ने यहां के कुलसचिव तथा एम. मुजीब ने प्रोफेसर का पद भार संभाला। डा. आबिद हुसैन ने प्रकाशन विभाग की देख-रेख करने के साथ-साथ जामिया तथा पयाम-ए-तालीम नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इन निष्ठावान तीन पुरुषों के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप जामिया को उसके छठे वर्ष में नवजीवन प्राप्त हुआ। वास्तव में पश्चिमी शिक्षा प्राप्त इन युवकों द्वारा किए गए संकल्प ने युग परिवर्तन जैसा प्रभाव उत्पन्न किया। उनके निःस्वार्थ कार्य और परिश्रम ने जामिया के अन्दरूनी वातावरण को अल्प समय में ही बदल डाला, जिसकी राष्ट्रीय नेताओं ने भी भूरि-भूरि सराहना की। जनवरी, 1927 में कांग्रेस प्रधान, श्रीनिवास आयंगर ने जामिया के निरीक्षण के समय कहा, “अन्य राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएं निर्जीव हो चुकी हैं परन्तु मैंने देखा कि जामिया की व्यवस्था जीवंत है और आशान्वित हूं...कि इसकी नींव और सुदृढ़ होगी।” इसी प्रकार नवम्बर 1927 में महात्मा गांधी यहां पधारे और अलीगढ़ में उस महत्वपूर्ण दिवस का स्मरण किया जिस दिन वहां विद्यार्थियों ने एम.ए.ओ. कालेज का बहिष्कार कर जामिया की नींव रखी थी। जामिया के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए महात्मा गांधी ने कहा :

“मुझे उन गौरवपूर्ण दिनों की रूपरेखा यहां पाकर और यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि आप लोग इस ध्वज को फहराए रखने के भरसक प्रयास में हैं। आपकी संख्या अधिक नहीं, परन्तु विश्व कभी भी अच्छे तथा निष्ठावान पुरुषों से भरा नहीं रहा है। मेरा निवेदन है कि अपनी कम संख्या को देखकर आप लोग परेशान न हों वरन् आप लोग जहां और जितने भी हैं देश की स्वाधीनता आप पर ही निर्भर करती है। भारत की स्वतंत्रता पाने के लिए आवश्यक वस्तुएं आपके पास हैं या नहीं, मुझे ज्ञात नहीं; पर इतना जानता हूं कि वह सामग्री यदि आपके पास नहीं तो और कहां होगी। वह है ईश्वर का भय तथा किसी भी व्यक्ति अथवा साम्राज्य कहे जाने वाले व्यक्तियों के समूह के भय से मुक्ति। यदि इन दो सारतत्वों का शिक्षण आपकी संस्था में नहीं मिल सकता तो ऐसे अन्य स्थान का मुझे पता नहीं जहां यह संभव हो...। मुझे विश्वास है कि इन दोनों सारतत्वों का शिक्षण यहां निष्ठापूर्वक हो रहा है...।”

जामिया को एक अन्य आघात दिसम्बर, 1927 में उस समय लगा जब इसके कुलाधिपति हकीम अजमल खां का निधन हो गया जो इसके लिए धनसंग्रह में अति निपुण थे। सामान्यतः उनके निधन से देश को जो क्षति हुई उससे बढ़कर जामिया वालोंको हुई। उनके उत्तराधिकारी डॉ० मुख्तार अहमद अन्सारी अमीर-ए-जामिया (कुलाधिपति) बने जो जामिया की समृद्धि के लिए उतने

ही समर्पित थे। उन्होंने हकीम साहब की स्मृति हेतु जामिया की आर्थिक दशा सुधारने तथा उसकी स्मृति को सदैव बनाए रखने के लिए *अजमल जामिया* नामक कोश आरंभ किया। परन्तु धनसंग्रह का जो लक्ष्य निर्धारित था वह पूरा नहीं हुआ। इस उद्देश्य से ज़ाकिर साहब ने वित्तीय समस्या के समाधान हेतु इस संस्था की पुर्नव्यवस्था के लिए एक समिति, *अन्जुमन-ए-तालीम-ए-मिल्ली* (राष्ट्रीय शिक्षा समिति) स्थापित की जिसमें डॉ एम.ए. अन्सारी और जमनालाल बजाज को क्रमशः प्रधान तथा कोषाध्यक्ष बनाया गया। ज़ाकिर हुसैन स्वयं इस समिति के सचिव बने।

इसके आगे इस समिति ने जामिया को सुचारू रूप से चलाने का दायित्व वहन किया। अपने सहयोगियों सहित ज़ाकिर साहब ने जामिया की सेवा हेतु दो दशकों तक डेढ़ सौ रुपये की अल्प राशि मासिक वेतन के रूप में लेने का संकल्प लिया। बाद में उन्होंने इस राशि को घटा कर मात्र अस्सी रुपये प्रति मास कर दिया। जामिया के कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों को वेतन देने में प्राथमिकता दी जाती थी, जब कि ज़ाकिर हुसैन सबसे अन्त में वेतन लिया करते थे। फिर यह निर्णय हुआ कि कर्मचारियों के वेतन का आधा भाग नक़द भुगतान कर आधा उनके खाते में जमा कर दिया जाएगा। तब ज़ाकिर साहब का नक़द वेतन घटकर चालीस रुपये प्रतिमास रह गया। यह नगण्य राशि उन्हें 1944 तक मिलती रही। तत्पश्चात् उन्हें अस्सी रुपया मासिक वेतन 1948 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त होने तक मिलता रहा। इस अवधि में वे दैनिक प्रयोग की वस्तुएं किराने के एक दुकानदार, सुब्बा बनिये से लिया करते थे जिसकी दुकान करोलबाग में थी। वह बहुत ही उदार था और जामिया के अन्य अध्यापकों को आवश्यक वस्तुएं उधार पर देता था। इतने पर भी ज़ाकिर साहब के वेतन का अधिक भाग दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति में ही व्यय हो जाता था। इसी कारण जब उन्होंने जामिया छोड़ी तब उनके खाते में लगभग सौ रुपये ही शेष थे।

इस प्रकार जामिया दो दशकों तक ज़ाकिर हुसैन की उदारता और कुशल संचालन में आर्थिक तथा अन्य विविध समस्याओं के होते हुए भी समृद्ध होती रही।

जामिया ने वयस्कों के लिए अपने परिसर में सांध्यकालीन विद्यालय आरंभ किया। इसके प्रवेश में निरंतर वृद्धि हुई। दिल्ली के बाड़ा हिन्दुराव क्षेत्र में भी इसकी शाखा खोली गई। साहित्यिक पत्रिका *जामिया* तथा *पयाम-ए-तालीम* का निरंतर एक अच्छे स्तर का प्रकाशन होता रहा। इसी प्रकार दीवार पर लगने वाले *जौहर*, *अलमुसव्वर*, *गुलशन*, आदि समाचार पत्रों को भी आरंभ किया गया। उर्दू के उत्थान हेतु एक अकादमी डा. आबिद हुसैन की देखरेख में गठित की गई, जिसका उन्हें सचिव नियुक्त किया गया। इसके अन्तर्गत व्याख्यानों तथा उर्दू की उत्तम स्तर की विविध विषयों की पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था की गई। शिक्षा पद्धति में पूर्ण रूप से परिवर्तन कर दिया गया। प्रोजेक्ट पद्धति तथा अन्य नई प्रणालियों के अंगीकार करने पर जामिया स्कूल ने विदेशों के शिक्षाविदों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया। इसमें पत्रकारिता तथा वाणिज्य जैसे नये विषयों को आरंभ कर व्यापार हेतु अभ्यास के लिए दुकानें लगाई गईं जिनका संचालन स्वयं विद्यार्थी ही करते थे। उसी प्रकार बच्चों का बैंक तथा खोंचा भी आरंभ किया गया। बच्चों को प्रबंध करने की कला का अभ्यास कराने के लिए ज़ाकिर साहब ने जामिया में बच्चों की सरकार स्थापित की थी। जनता को आकर्षित करने तथा विद्यार्थियों को विविध गतिविधियों में व्यस्त रखने के लिए उन्होंने शिक्षा महोत्सव (तालीमी मेला) आरंभ किया जो जामिया के स्थापना दिवस पर आयोजित किया जाता था। अप्रैल माह में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया भी एक नियमित व्यावहारिक प्रथा थी। विज्ञान के विद्यार्थियों को उनके जीवन में सक्षम बनाने के लिए उन्होंने उन्हें दैनिक प्रयोग की वस्तुओं का निर्माण कर जामिया केमिकल इन्डस्ट्रीज़ के नाम से बिक्री करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार उन्हें हस्तकला, बागवानी, बड़ईगरी तथा ज़िल्दसाजी जैसे विषयों से भी परिचित कराया गया।

विद्यार्थियों में साहित्यिक रुचियां उत्पन्न करने के लिए ज़ाकिर साहब ने मुशायरा, बैत बाजी, अंत्याक्षरी, वादविवाद तथा निबंध प्रतियोगिताओं का आयोजन किया। उन्होंने उन्हें लेख आदि लिखने के लिए प्रोत्साहित किया तथा उनके लिए कहानियां लिखकर अन्य लोगों को भी प्रेरित किया कि वे भी बच्चों के लिए लिखें। इसी प्रकार उन्होंने विद्यार्थियों को खेल-कूद, नाटक तथा स्काउटिंग में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया।

सन् 1935 में उन्होंने यमुना के तट पर स्थित ओखला ग्राम में एक भूभाग खरीदा जहां आज जामिया स्थित है। ज़ाकिर साहब ने उपस्थित गणमान्य व्यक्तियों को महत्व न देकर संस्था के सबसे कम आयु के बालक से, जो उस समय समारोह में उपस्थित था, इस भवन का शिलान्यास कराया। अगले वर्ष वे प्राथमिक विद्यालय को करोलबाग से स्थानान्तरित कर ओखला ले आए। धीरे-धीरे वहां संस्था के अन्य विभाग भी लाये गये। ओखला में नये भवनों के निर्माण के लिए धन संग्रह करने का अत्यधिक श्रेय उन्हें ही जाता है। यहां जनता की सेवा करने के उन्हें अधिक अवसर मिले। उन्होंने विद्यार्थियों को ओखला और जामिया नगर के ग्रामीणों को स्वास्थ्य, स्वच्छता और आरोग्य के विषयों से परिचित कराने के लिए भी भेजा। महात्मा गांधी द्वारा चलाये जा रहे एक रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्होंने ग्रामोण उत्थान को शिक्षा के भाग के रूप में कार्यान्वित किया। उन्होंने जामिया बिरादरी स्थापित की, जिसने जामिया के लोगों और पड़ोस के ग्रामीणों के बीच सद्भावना का वातावरण उत्पन्न किया। इसके पश्चात्

ज़ाकिर साहब ने शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु शिक्षक महाविद्यालय स्थापित किया। उनकी शिक्षा पद्धति के अपूर्व सफल प्रयोगों से विश्व में उनकी जयजयकार हुई। उन्होने एक खुले विद्यालय की भी स्थापना की। उन्हें जामिया के शिक्षक समुदाय की उन्नति का सदा ध्यान रहता था और इस दिशा में वे भरसक प्रयास भी करते रहे।

ज़ाकिर साहब ने विशिष्ट व्यक्तियों से आग्रह कर उनकी व्यक्तिगत संगृहीत पुस्तकों के अनुदान से जामिया पुस्तकालय को समृद्ध किया। उनके आह्वान पर लोगों ने सहर्ष असंख्य पुस्तकें जामिया पुस्तकालय को अन्तरित कर दीं, जो वहां पर डॉ. ज़ाकिर हुसैन पुस्तकालय में अब भी सुरक्षित हैं।

उन्होंने विद्यार्थियों में उत्तरदायित्व, अपनेपन तथा भाईचारे की भावना जागृत की। वे अकस्मात् छात्रावास में पहुंच कर विद्यार्थियों के साथ रात्रि भोज, सवेरे के स्वल्पाहार तथा दोपहर के भोज में सम्मिलित हो जाया करते थे। उन्हें स्वच्छता की उत्कण्ठा थी और इसके लिए सदा विद्यार्थियों को बाध्य करते थे। अहाते को साफ़ रखने के लिए वे स्वतः ही गिरे पड़े रद्दी कागज और चिथड़े उठा लेते थे। एक बार उन्होंने खिड़कियों के शीशों को मैला देखकर संबंधित अधिकारी से सफाई कराने के लिए कहा। अगले निरीक्षण के समय जब वे शीशे मैले ही दिखाई दिये तो उन्होने एक डंडे से खिड़कियों के शीशे तोड़ डाले। एक अन्य अवसर पर उन्होने एक विद्यार्थी से टोपी धोकर पहनने को कहा। कुछ समय उपरान्त उसे वही मैली टोपी पहने देख उन्होने उसे उतरवाकर स्वयं धोया और पुनः उस विद्यार्थी को पहना दी। इसी प्रकार उन्होने विद्यार्थियों से जूते पालिश करके पहनने का आग्रह किया और जब कभी वे उन्हें मैले जूते पहने देखते तो वे स्वतः पालिश करने लग जाते थे। उनके इन सभी कार्यों से लोग लज्जित होकर पुनः उन्हें उलाहने का अवसर नहीं देते थे।

ज़ाकिर साहब के कुलपति रहते जामिया अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई थी। ध्येयपूर्ण संस्था होने की इसकी प्रसिद्धि से देश की अन्य शिक्षा संस्थाओं ने उनसे उसी प्रकार के विषय निर्धारण हेतु विनय किया। इसके अतिरिक्त सरकार ने भी यहां की कुछ उपाधियों को स्वतः मान्यता दे दी।

एक महान शिक्षाविद् तथा निष्ठावान व्यक्ति होने के नाते ज़ाकिर साहब को राष्ट्रीय स्तर पर आंका जाने लगा। उनके द्वारा देश में दिए गये भाषणों, विश्वविद्यालयों में दीक्षांत भाषणों तथा समय-समय पर विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से उनके शिक्षा संबंधी विचारों का पता चलता है। ख़ालिदा अदीब, जिनसे ज़ाकिर साहब की पहले जर्मनी में भेंट हुई थी, उनकी प्रशंसा करतीं। ज़ाकिर साहब के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होने कहा : “...ज़ाकिर साहब जैसा प्रगतिशील व्यक्ति मिल पाना असंभव है...उनके कार्यकलाप किसी भी दल के पूर्वाग्रहों से सर्वथा मुक्त हैं, वे अपने सम्पूर्ण समय और शक्ति को रचनात्मक तथा उचित सीमा तक प्रायोगिक रूप से शिक्षा संबंधी समस्याओं में लगाते हैं। वे जादुई दृष्टि रखते हैं, एक ऐसी दृष्टि जिसका मात्र एक ध्येय हो...।”

एक शिक्षाविद् के नाते ज़ाकिर साहब को परम्परागत शिक्षा की सीमाओं का पूर्ण बोध था। इसीलिए उन्होने जामिया के माध्यम से उस नई शिक्षा विधि को लागू करने का प्रयास किया जिसका मूल हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत में है।

वास्तव में उन्होने भारत में शिक्षा प्रणाली की पुनः व्यवस्था करने पर बल दिया। 1934 में, दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में विचार व्यक्त करते हुए ज़ाकिर साहब ने कहा :

“सर्वप्रथम समस्त शिक्षा प्रणाली में नीचे से ऊपर तक दो परिवर्तन करने पड़ेंगे इनमें से प्रथम है हमारी शिक्षा की परिस्थिति में आमूलचूल परिवर्तन...। इसमें अपनी समस्त शिक्षा प्रणाली को भारतीयता प्रदान करना आवश्यक है। इस देश में उन पदों पर तथा उस तथाकथित शिक्षित युवा वर्ग की भर्ती समाप्त करना आवश्यक हो जाता है जो अपनी ही कला के सौंदर्य के प्रति अंधे हों, अपने ही संगीत के सुर के प्रति बहरे हों, अपनी भाषा और साहित्य से लज्जित हों, जिनके लिए जो उनका अपना है वह तुच्छ और अधम लगता हो, और जो विदेशी हो वह आदर्शपूर्ण और विशिष्ट लगता हो.....।

“शिक्षा में इस प्रकार परिवर्तन करना आवश्यक है कि युवावर्ग की स्वदेश में ही विदेशी मानकर भर्तस्त्रा कर पाना असंभव हो जाए, वे अपनी भाषा बोल पाने में असमर्थ न हों और अपनी विचारधारा में चिन्तन करने में अक्षम न हो जाएं। जिनकी वाणी उधार की न हो, और जैसा कि कवि ने कहा है, जिनके हृदय में आकांक्षाएं भी मांगी हुई न हों...।

“दूसरा परिवर्तन जो करना आवश्यक होगा वह है विद्यालय को चरित्र निर्माण का साधन बनाने में सब कुछ करना...हमारे शैक्षणिक संस्थानों में उन पाठ्यक्रमों को व्यावहारिक रूप प्रदान करना होगा जो पढ़ाया जाता है...।”

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने शिक्षा के अर्थ को कितनी गहनता से समझा था।

देश में प्रत्येक विशिष्ट संस्कृति की उत्साहवर्धक प्रगति के साथ ज़ाकिर साहब ने राष्ट्र के प्रति स्नेह प्रकट करने के लिए अत्यन्त प्रयास किया। यह उन्हीं के अथक प्रयासों का प्रतिफल था कि जामिया भारत की सामासिक और पंथ निरपेक्ष संस्कृति की प्रतीक संस्था बन गई।

“स्वतंत्रता के लिए संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए और स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने पर उसे सार्थक बनाने के लिए नागरिकों के रूप में युवा वर्ग को प्रशिक्षित करना ही जामिया का कार्य था,” उन्होने कहा था।

एक शिक्षाविद् होने के नाते ज़ाकिर साहब की विचार शक्ति को उस समय विश्व स्तर पर सराहा गया जब 1937 में गांधी जी ने वर्धा में एक सम्मेलन आयोजित किया और उन्हें बुनियादी शिक्षा नीति रचने के लिए निमंत्रण भेजा। महात्माजी के बुलावे को शिरोधार्य कर ज़ाकिर साहब ने बड़े मनोयोग से सम्मेलन के लिए निम्न प्रस्ताव तैयार किए।

1. राष्ट्र व्यापी स्तर पर सात वर्ष तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना।
2. अनुदेशों का माध्यम मातृभाषा हो।
3. शिक्षा प्रक्रिया का शारीरिक और उत्पादन कार्यों के साथ तालमेल अनिवार्य हो।
4. शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों के वेतन को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

महात्मा गांधी ने ज़ाकिर साहब को देश की मूल्यवान निधि समझा और उन्हें उस समिति का अध्यक्ष मनोनीत किया जिसको सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के अनुसार विस्तृत पाठ्यक्रम बनाने का कार्यभार सौंपा गया था। ज़ाकिर साहब ने इस श्रम साध्य कार्य का योग्यतापूर्ण समापन कर अपनी रिपोर्ट को बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा योजना के नाम से प्रस्तुत किया। कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है कि यह बुनियादी शिक्षा उस किताबी शिक्षा पर केन्द्रित परीक्षा पर आधारित शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध एक विद्रोह थी जो अंग्रेजी शासन काल में अनेक दशकों तक पनपती रही। इसने राष्ट्रीयता को जागृत किया...जिसने शिक्षा संबंधी विचारों और अभ्यासों को व्यापक क्षेत्र में स्थाई तौर पर प्रभावित किया। वास्तव में इस नई योजना की आवश्यकता कांग्रेस को थी, जिसने 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत चुनाव में ग्यारह अंग्रेजी प्रान्तों में से सात प्रान्तों में सत्ता प्राप्त कर ली थी। स्पष्ट है कि कांग्रेस सरकारों ने ज़ाकिर हुसैन कमेटी की रिपोर्ट को स्वीकार किया। ज़ाकिर साहब हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के प्रधान चुने गये जिसने जामिया मिल्लिया के शिक्षक प्रशिक्षण कालेज को नियमित वार्षिक अनुदान दिया।

इन सब कठिन परिश्रमपूर्ण कार्यों के कारण ज़ाकिर साहब के नेत्रों पर बुरा असर पड़ा जिसके कारण 1939 में उन्हें ग्लाकोमा के उपचार के लिए जर्मनी जाना पड़ा। जब वे वहां पहुंचे तब तक द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हो चुका था जिसके परिणामस्वरूप बाध्य होकर इलाज को अधूरा छोड़कर उन्हें जर्मनी से लौटना पड़ा। अंग्रेजों द्वारा एकपक्षीय युद्ध की घोषणा के फलस्वरूप कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया जिससे ज़ाकिर साहब की सब मेहनत पर पानी फिर गया। इसके अतिरिक्त आल इण्डिया मुस्लिम लीग ने 23 मार्च, 1940 को लाहौर प्रस्ताव पास किया तथा वर्धा योजना पर अभियोग लगाया। इससे ज़ाकिर साहब को बहुत आघात पहुंचा किन्तु उन्होंने अपना प्रयास नहीं छोड़ा और शिक्षा पद्धति विज्ञान के क्षेत्रों में प्रयोग करते रहे, यद्यपि उनके हृदय में इसका दुःख अवश्य बना रहा। वे सक्रिय शिक्षाविदों के लिए अत्यन्त शान्त वातावरण चाहते थे। वे शिक्षा को राजनीति में घसीटने के विरोधी थे। इसीलिए उन्होंने देश के राष्ट्रीय नेताओं से भेंट कर शिक्षा के विकास के लिए समुचित वातावरण बनाने के लिए सहायता की अपेक्षा की। 1941 में बुनियादी शिक्षा सम्मेलन में, जो डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुआ, उन्होंने अपने भाषण में कहा :

“मैं समझता हूँ राजनीतिक नेताओं को, विभिन्न समुदायों और समूहों की इच्छाओं और कठिनाइयों को समझकर, सत्ता और सुविधाओं को स्पष्ट और खुले आदान प्रदान को बढ़ावा देकर, एक नैतिक और प्रगतिशील राज्य का निर्माण करने का जैसा अवसर आज मिला है वैसा इसके पूर्व कभी नहीं मिला।

“और जब तक ऐसा हो नहीं जाता हम जैसे बुद्धिजीवियों की दशा दयनीय बनी रहेगी। हम कब तक इस मरुस्थल को जोतते रहें? कब तक हमें यह देखना पड़ेगा कि हमारी योजना, हमारे विचार, हमारे स्वप्न का संदेह और अविश्वास के विपैले धुपे में दम घुटता रहे? हम एक राजनीतिक त्रुटि के भय से कब तक थरते रहेंगे कि हमने जो श्रम और स्नेह से जीवनभर में अर्जित किया है, वह छोटे से दुराग्रह मात्र से सदा के लिए समाप्त हो जाए। हमारा कार्य सरल नहीं, हम अक्सर निराश होते हैं और कभी हताश होते हैं। हम कभी अनुभव करते हैं कि हमारी ही शक्ति हमें हतोत्साहित कर रही है, तो हम किसका सहारा लें, क्या इस समाज का? जहां मान्यताओं को अन्तिम नहीं माना जाता, यह समाज जिसे ऐसे संगीत का अनुभव न हो जिसे मिल कर गाया जा सके, कोई त्यौहार नहीं जिसे मिलकर मना सकें, कोई खुशी नहीं जिसे मिलकर बांट सके, कोई दुःख ऐसा नहीं जो सहानुभूति हेतु हृदय से हृदय को जोड़ दे? हमारी पीड़ा सहनशक्ति से भी आगे है। हमें मुक्ति दो, सहायता देनी है तो आज दो अथवा कौन जानता है कल क्या होने वाला है?”

ज़ाकिर साहब राजनीतिज्ञ नहीं थे शिक्षाविद् थे फिर भी राजनीतिज्ञ उनका आदर करते थे। उन्होने राष्ट्र निर्माण में निष्ठापूर्ण उत्सर्ग किया था इसलिए वे उन्हें ईमानदार और निष्कपट व्यक्ति मानते थे। जब वे जामिया की रजत जयंती समारोह की तैयारियां कर रहे थे, जिसको अक्टूबर 1945 की बजाय नवम्बर 1946 में मनाना निश्चित किया गया था, उस समय उनका एक शिक्षाविद् होने के नाते महत्व और बढ़ा जिसके फलस्वरूप जून 1946 में अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के लिए उनका नाम विचाराधीन रहा। किन्तु ज़ाकिर साहब में इतनी आत्म त्याग की भावना थी कि उन्होने यह शर्त रखी कि जब तक इंडियन नेशनल कांग्रेस और आल इंडिया मुस्लिम लीग, दोनों मिलकर उनका नाम प्रेषित नहीं करतीं तब तक वे सरकार की सेवा करने में असमर्थ हैं, स्पष्ट है कि आल इंडिया मुस्लिम लीग इस सुझाव को मानने वाली नहीं थी।

ज़ाकिर साहब कांग्रेस और लीग के नेताओं को जामिया की रजत जयंती समारोह के अवसर पर एक ही मंच पर लाने में सफल हो गए। समारोहों में एक प्रदर्शनी, महिला सम्मेलन, उल्मा द्वारा भाषण, पुराने विद्यार्थियों की सभाएं, सिम्पोजिया, सेमीनार, दीक्षान्त समारोह, नाटक, वाद-विवाद, खेल-कूद, स्काउट रैली, कैम्पफायर आदि का आयोजन किया गया था। परन्तु प्रतिदिन साम्प्रदायिक दंगों के कारण समस्त वातावरण दूषित हो गया था। सूर्यास्त के पश्चात् घर के बाहर निकलने पर सरकारी रोक थी, साम्प्रदायिक संकीर्णता की आग समस्त दिल्ली में भड़की हुई थी। कहा जाता था कि समारोह असफल रहेंगे परन्तु ज़ाकिर साहब इन रुकावटों के होते हुए भी कार्यरत रहे। प्रमुख समारोहों की अध्यक्षता भोपाल के नवाब हमीदुल्ला खां ने की। पंडित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, सी. राजगोपालाचार्य, आसफ़अली, मुहम्मद अली जिन्ना, कुमारी फ़ातिमा जिन्ना, लियाकत अली खां तथा अन्य विशिष्ट राजनीतिज्ञ मंच पर शोभायमान थे जो यदि ज़ाकिर साहब न होते तो एक स्थान पर कभी एकत्र नहीं हो सकते थे। यह अति स्मरणीय था। ज़ाकिर साहब ने जामिया का संक्षेप में परिचय दिया और कांग्रेस व लीग के विशिष्ट नेताओं की उपस्थिति का लाभ उठाते हुए उन्होंने अपने भाषण में तत्कालीन साम्प्रदायिक संकीर्णता का इस प्रकार वर्णन किया :

“आप सब राजनीतिक नभमण्डल के तारागण हैं, आप लोगों के प्रति हजारों नहीं लाखों के हृदयों में स्नेह और आदर हैं। मैं इस अवसर का लाभ उठा कर बड़े ही दुःख के साथ शिक्षा कार्य में व्यस्त लोगों की भावना व्यक्त करना चाहता हूँ। आपसी घृणा की जो आग इस देश में धधक रही है उसमें हमारा सब्ज बाग केवल पागलपन सा है। जिस धरती में सभ्यता और मनुष्यता पली है वह जल रही है, यहां समर्थ और धैर्यवान व्यक्तियों के पुष्प किस प्रकार लगाये जा सकते हैं जिसका स्तर पशु-प्रकृति से भी घटिया हो, ऐसे समाज को हम कैसे सुन्दर बना सकते हैं ? जब सभी जगहों पर अशिष्ट लोगों का अधिकार हो तो हम अपनी संस्कृति की रक्षा कैसे करें और अपने लोगों को किस प्रकार प्रशिक्षण दें ? इन भयानक पशुओं के संसार में जीवन सिद्धान्तों की रक्षा हम किस प्रकार करें ? यह शब्द कटु अवश्य लगते होंगे परन्तु इनसे भी अधिक कटु शब्द उस परिस्थिति के लिए कोमल है जो हमारे चारों ओर विद्यमान है। हमें अपने ध्येय बाध्य करते हैं कि हम बच्चों का आदर-सम्मान करें। किस प्रकार मैं आपसे दारुण व्यथा का वर्णन करूं जिसे हम सहन कर रहे हैं। इस पाशविक कृत्य में मासूम बच्चों तक को नहीं बख़्शा गया है ? एक भारतीय कवि ने कहा था कि जन्म लेने वाला प्रत्येक बालक अपने साथ यह संदेश लिए आता है कि ईश्वर अभी मानवता से निराश नहीं हुआ है परन्तु हमारे देश में मानव स्वभाव अक्सर इन पुष्पों को खिलने से पूर्व ही कुचल देने की प्रवृत्ति अपनाता रहा है। क्या हमारे देश की मानवता ने यह भावना त्याग दी है ? परन्तु ईश्वर के लिए आप सभी लोग मन और बुद्धि से एक होकर देश में फैली इस आग को बुझाएं। अब यह समय इस बात का पता लगाने का नहीं कि यह आग किसने लगाई और कैसे लगाई। आग धधक रही है और इसे बुझाया जाना चाहिए। यहां पर इस या उस राष्ट्र को बचाने का प्रश्न नहीं वरन् यह प्रश्न मानव सभ्यता और पाशविक सभ्यता के बीच चुनाव का है। ईश्वर के लिए देश की एक शाश्वत् सभ्यता को, क्षत-विक्षत करने के लिए किन्हीं ऐसे तत्वों को आधार न बनाएं जिनके द्वारा इस सभ्यता को अब क्षति पहुंचाई जा रही है।”

इस ओजस्वी भाषण से लोगों के हृदय पसीज गए। यह भावनात्मक और संवेदनशील भाषण था जिससे प्रभावित हो वहां उपस्थित नेतागणों के नेत्र अश्रुपूरित हो गये। ज़ाकिर साहब द्वारा उनकी चेतना को प्रेरित करने के पश्चात् अब इन नेताओं द्वारा कौन सा कार्य किस प्रकार संपादित किया जाय, यह उनके आत्मिक बल पर छोड़ दिया गया।

पंडित नेहरू की अन्तरिम सरकार, लीगी सदस्यों द्वारा कार्य में व्यवधान उत्पन्न कर देने के कारण संकट का सामना कर रही थी। पाकिस्तान की मांग और अधिक तीव्र हुई, जिसे अन्ततः नये वाइसराय लार्ड माउंटबेटन ने मान भी लिया। 15 अगस्त, 1947 को भारत ने स्वाधीनता का उषाकाल तो देखा परन्तु उसके मुख पर किसी प्रकार का कलंक न आया हो सो बात नहीं। ज़ाकिर साहब अत्यन्त खिन्न थे क्योंकि वह आदर्शपूर्ण संस्कृति, जिसमें उनका लालन-पालन हुआ था, क्षत-विक्षत हो गई थी। जामिया भी असुरक्षित थी क्योंकि इस पर किसी भी समय आक्रमण हो सकता था, यद्यपि पंडित नेहरू ने इसका ध्यान रखा। महात्मा गांधी के पदार्पण से जामिया को अपनी सुरक्षा का भान होने लगा। जनरल कैरियप्पा भी जामिया देखने गए और वहां की सुरक्षा के लिए उन्होंने सेना के कुछ जवान तैनात किए।

ज़ाकिर साहब उन दिनों मानसिक एवं शारिरिक रूप से अस्वस्थ थे। रजत जयन्ती समारोह ने उनके स्वास्थ्य को गिरा दिया था। साम्प्रदायिक घृणा ने उनके मन और मस्तिष्क को गहरा दंश मारा। उनके मित्रों ने उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए कश्मीर जाने की सलाह दी। लुधियाना रेलवे स्टेशन पर कुछ असामाजिक तत्वों ने उन्हें घेर लिया परन्तु किसी प्रकार वे सुरक्षित दिल्ली लौट आए। इस घटना से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने जीवनपर्यन्त साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष किया था। परन्तु यह घटना दूसरों के साथ अनुभव करते समय रोंगटे खड़े कर देने वाली थी। लौटने पर उन्होंने प्रधानमंत्री पंडित नेहरू तथा गृहमंत्री सरदार पटेल को पंजाब की स्थिति से अवगत कराया। देश की इस गिरती हुई परिस्थिति से उन्हें आघात पहुंचा। प्रधानमंत्री ने स्वतः जालंधर जाकर परिस्थिति का निरीक्षण किया।

इन दिनों में ज़ाकिर साहब शरणार्थियों की भोजन और आवास की आवश्यकताओं और सुरक्षा की व्यवस्था करने में व्यस्त रहे। मकतबा जामिया भी आग की लपेट में आ गया जिससे बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें नष्ट हो गईं। किसी प्रकार आधी पुस्तकों को समय पर बचा लिया गया। इतने दुःखद अनुभव के होते हुए भी वे विचलित नहीं हुए। प्रधानमंत्री के पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि जामिया को पचास प्रतिशत की बचत हुई। इसे और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि आधी पुस्तकें जलने से बचा ली गई तो फिर पचास प्रतिशत की बचत तो हुई ही।

ज़ाकिर साहब ने वास्तव में मानवता की तनमन से रक्षा की। आकाशवाणी से प्रसारित एक भाषण में उन्होंने कहा :

“आप संभवतः कहें कि मानव, प्रकृति का अंग मात्र नहीं। वह न तो पाषाण है, न वनस्पति और न पशु ही है, जो वैसा ही बना रहे जैसा प्रकृति ने गढ़ा है। मानव तो मानव ही है जो अपना संसार बनाता है और बिगाड़ता है। यह सत्य भी है। इसलिए मित्रो, मेरा निवेदन है, एक ही देश में हमारे अस्तित्व में आने के पश्चात् प्रकृति ने आप और हम में से भाइयों को नहीं बनाया है। अपितु हम लोग परस्पर और स्वतंत्रता से सदियों से रहते आए हैं और आपसी सुख दुःख बांटा है, एक दूसरे की त्रुटियों को अनदेखी कर विनम्र रहे हैं, एक दूसरे की गलतियों को भुलाकर आपसी अच्छाइयों को देखते आए हैं। ज्ञान और शिक्षा से एक दूसरे की कमियों को पूरा करते आ रहे हैं। प्यार से एक दूसरे से कंधे से कंधा मिलाकर चले हैं और एक दूसरे के मन मस्तिष्क में रह कर निष्ठा से दायित्वों को निभाया है। गुलामी की अंधेरी रातों में इन संबंधों की अस्थिर चमक में हम चलते आये हैं। अब जबकि स्वतंत्रता का सूर्योदय हो चुका है, हमारे हृदय में विच्छिन्नता क्यों, हमारे नेत्र एक दूसरे को पहचानने में असमर्थ क्यों हैं? मित्रों, दोस्ती का रास्ता अपनाओ, शत्रुता की भावना त्यागो और सदियों पुरानी मित्रता को क्षणिक आवेश में समाप्त न करो। जो पागलपन से ग्रसित हैं, उनके उपचार की विधि के विषय में सोचो, वे हमारे भाई हैं और मित्र बन सकते हैं। उनसे शत्रुओं की भांति, मित्रता तथा वफ़ादारी की ज़मानत मत मांगो बल्कि मित्रता के माध्यम से वफ़ादारी की नींव को दृढ़ करो। मित्रता का पौधा संदेह, अविश्वास तथा घृणा की भूमि में नहीं पनपता। स्नेही और विश्वासपात्र बनकर मानव प्रकृति में आस्था रखकर मित्रता के पौधे को पल्लवित होते देखो, और यह भी देखो कि इसके पुष्प बदले में किस प्रकार सुगन्ध देते हैं और इनके रंगों की चमकती सुन्दरता आसपास के मलीनतापूर्ण वातावरण को किस प्रकार अपने में समेट लेती है। भाइयों, मित्रता बढ़ाओ, इसके सिद्धान्तों को अपनाओ आवश्यकताओं की पूर्ति करो इसका अनुसरण करो और दूसरों से भी यही आग्रह करो।”

उन्होंने जनता की अन्तरात्मा को जगाने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने दिया। महात्मा गांधी ने जनवरी 1948 में जब साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए अनशन किया तब महात्मा को संबोधित कर ज़ाकिर साहब ने इस प्रकार कहा :

“हमें कोई संदेह नहीं कि आपने श्रेष्ठ बुद्धि के मार्गदर्शन में उपयुक्त क्षण चुनकर जनता से हृदय स्वच्छ करने का आग्रह किया है। ईश्वर ने आपको शक्ति और विश्वास दिया, जो असफल नहीं होता और वह विश्वास जिसे विपरीत परिस्थितियां भी नहीं हिला सकतीं। ईश्वर आपके साथ है और आप सफल होंगे। हम केवल लज्जित हैं कि स्वतंत्र भारत के पास आपको देने के लिए द्वेष और पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है...ईश्वर आपको शक्ति प्रदान करे जिससे आप उच्च स्वतंत्रता में हमारा मार्गदर्शन कर सकें जिसकी प्राप्ति के लिए हमारे अन्धे कुकृत्यों की अनदेखी कर हमें आप अब भी योग्य समझते हैं। संघर्ष करते रहें। यदि कोई हमारा हृदय परिवर्तन कर सकता है तो वह है आपका विश्वास, जिस पर हम पूर्ण आश्वस्त हैं, रहेगें और जिसका असर अपने आप होगा।”

महात्मा गांधी के अनशन से देश में सद्भावना उत्पन्न होने लगी और परिस्थिति सामान्य होने लगी। किन्तु अन्ततोगत्वा अहिंसा का यह दूत 30 जनवरी, 1948 को नई दिल्ली के बिड़ला भवन में हिंसा का शिकार हो सदा के लिए अमर हो गया। ज़ाकिर साहब के लिए यह असहनीय आघात था, परन्तु ईश्वर इच्छा प्रबल होती है।

इन सभी सांघातिक अनुभवों से ज़ाकिर साहब दुःखी होकर थक चुके थे। दो दशकों पूर्व उन्होंने जामिया की बीस वर्षों तक सेवा करने की प्रतिज्ञा की थी। प्रतिज्ञा पूरी होने का समय आ गया था। नौकरशाही ने जामिया की प्रगति और प्रसार में गतिरोध

पैदा किया तथा मंत्रियों से जब तब मिलने की अनिच्छा ने उन्हें इस पदभार से मुक्त होने पर विवश कर दिया था। इसलिए उन्होने अक्टूबर, 1948 में जामिया कोर्ट से स्वयं को पुनः कुलपति निर्वाचित न करने की प्रार्थना की।

जहां उस समय जामिया की निश्चित छवि बनती जा रही थी, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की ख्याति धूमिल हो रही थी। जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने ज़ाकिर साहब से अपने इस विश्वविद्यालय को पुनः व्यवस्थित और प्राचीन ख्याति से परिपूर्ण करने का आग्रह किया। उन्होंने इसे एक महान कार्य करने का अवसर माना और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का कुलपति बनना इस शर्त पर स्वीकार किया कि वे सरकार द्वारा मनोनीत न होकर विश्वविद्यालय के कोर्ट की सर्वसम्मति से ही यह पद स्वीकार करेंगे। फलस्वरूप नवम्बर, 1948 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के कोर्ट ने उन्हें कुलपति चुना और 1951 में, 1951 के संशोधित मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम के अन्तर्गत पुनः छः वर्षों के लिए कुलपति निर्वाचित किया।

कुलपति का पद भार ग्रहण करने के पश्चात् ज़ाकिर साहब को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ा। विश्वविद्यालय की इतनी हीन दशा थी कि इसे अपनी पूर्व ख्याति पाना असंभव प्रतीत होता था। विद्यार्थी हताश हो चुके थे क्योंकि उन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय लगता था। उनकी संख्या भी बहुत कम हो गई थी और योग्य शिक्षक भी विश्वविद्यालय छोड़कर चले गये थे।

हमेशा की तरह ज़ाकिर साहब ने वहां विद्यमान अव्यवस्था और भ्रांति को समाप्त करने में अपनी शक्ति लगाई। उन्हें महान सफलता मिली और विश्वविद्यालय को खोई हुई ख्याति पुनः प्राप्त हुई। उन्होंने शिक्षकगण को भय और संदेह से मुक्त कर उनमें विश्वास की भावना का संचार किया जिससे विद्यार्थियों और शिक्षकों की संख्या में वृद्धि हुई। उन्होने विश्वविद्यालय की विविध गतिविधियों से उन्हें संबंधित कर उनकी शक्ति का उपयोग दोषपूर्ण तत्वों से लोहा लेने में किया। अनेक प्रख्यात अध्यापकों को और विशिष्ट विद्वानों को वे विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों में लाए और उनका साथ दिया। उन्होने विज्ञान विभाग का विस्तार कर उसे शोध तथा उच्च शिक्षा केन्द्र के रूप में परिणत किया। उन्होने इंजीनियरिंग महाविद्यालय पर विशेष ध्यान दिया और उसे गौरवपूर्ण संस्था का रूप दिया। उन्होने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हजारों पुस्तकों का संग्रह कर इसे स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित किया। नवभवनों का निर्माण कराकर उनके परिसर को सुन्दर उद्यानों से सुसज्जित किया। पुराने विद्यार्थियों की सभा का पुनः गठन कर अखिल भारतीय मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन को पुनर्जीवित किया। उन्होने *अन्जुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू* को पुनः स्थापित कर उसकी पत्रिका *हमारी जुबान* का एक जनवरी 1950 से प्रकाशन आरंभ किया। इसी प्रकार उन्होने अलीगढ़ इन्स्टीच्यूट गज़ट को मुस्लिम युनिवर्सिटी गज़ट के नाम से पुनर्जीवित किया।

उन्होंने प्राणिमात्र की अच्छाइयों से कभी विश्वास नहीं खोया। वे राष्ट्रीय जीवन में अलीगढ़ विश्वविद्यालय द्वारा निहित राष्ट्रीय योगदान के विषय में आशान्वित थे। मानवता के उत्थान के लिए, शिक्षा के सिद्धान्तों में निहित आदर्शपूर्ण और उन्नतिशील विशेषताओं पर उन्होने सदा बल दिया। उन्होने एक बार कहा :

“मुख्य विषय मस्तिष्क और आत्मा का विकास करना है जिसके प्रयास में समस्त जीवन लग जाता है। यह उसी समय आरंभ हो जाता है जब हम अपने चारों ओर के संसार के प्रति सचेत होने लगते हैं। शिक्षा संस्थाओं का कार्य यह देखना है कि हम दृढ़तापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हों।”

ज़ाकिर साहब की देखरेख में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, विद्वत्ता तथा वैज्ञानिक शोध के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इन सबके पीछे जो व्यक्ति था उसने न केवल नई जामिया ही बनाई बल्कि “पुराने अलीगढ़” को भी सुरक्षित रखा।

1956 में ज़ाकिर साहब ने अपने कार्यकाल की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही कुलपति पद से त्याग पत्र दे दिया क्योंकि वे सेवानिवृत्त जीवन व्यतीत करना चाहते थे, यद्यपि विशिष्ट उच्च पद निकट भविष्य में उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ज़ाकिर साहब कुलपति थे, तब भी वे शिक्षा आयोग, प्रेस आयोग तथा भारतीय विश्वविद्यालय आयोग के सदस्य रहे। पहले वह वर्ल्ड यूनिवर्सिटी सर्विस की राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष रहे और उसके पश्चात् 1956 में हेलन्सकी में जनरल असेम्बली द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष चुने गए। वे सेन्ट्रल बोर्ड आफ सेकेन्ड्री एजुकेशन के अध्यक्ष भी रहे। वे मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार की एजुकेशनल आर्गनाइजेशन कमेटी के भी सदस्य थे। वे पैरिस में यूनेस्को के एग्जीक्यूटिव बोर्ड के भी सदस्य थे। वे इन सभी पदों पर सफलतापूर्वक कार्यरत रहे और पूर्ण योगदान दिया। वास्तव में उस प्रत्येक समिति तथा आयोग में जिसमें उन्होने कार्य किया वे सदा अद्वितीय ही रहे।

अप्रैल, 1952 में जब वे अमेरिका की यात्रा पर थे तब ज़ाकिर साहब को राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार स्वीकार किया गया। उन्हें अप्रैल, 1956 में पुनः राज्य सभा में छः वर्षों के लिए सदस्य मनोनीत किया गया। उन्हें संसद की गतिविधियों में संभवतः विशेष रुचि इसलिए नहीं थी कि वे अलीगढ़ मुस्लिम

विश्वविद्यालय के कार्यों में अधिक व्यस्त रहते थे तथा अन्य क्षेत्रों में भी उनकी रचनात्मक गतिविधियां ही इसका एक कारण थीं। योजना आयोग द्वारा तैयार की गई दूसरी पंचवर्षीय योजना के विकास कार्यों से संबंधित प्रस्ताव को 1956 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संसद पटल पर अनुमोदन के लिए रखा था। तब ज़ाकिर साहब भी शिक्षाविद् और अर्थशास्त्री की हैसियत से वहां उपस्थित थे। उन्होंने उस समय अपने महत्वपूर्ण भाषण में उस प्रस्ताव का गुण-दोष के आधार पर विवेचन करते हुए अनेक त्रुटियों की ओर संकेत किया। उन्होंने प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलता को सराहते हुए प्रश्न उठाया कि क्या इससे और अधिक प्रगति करने में हम सक्षम नहीं ?

जामिया को उनकी देन, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को उनकी अमूल्य सेवाएं और विभिन्न निकायों के लिए किये गये उनके सफल कार्य पहले ही देश के जाने माने नेताओं का ध्यान आकृष्ट कर चुके थे और इसीलिए नेताओं ने निश्चय किया कि उनकी सेवाओं का सदुपयोग कुछ और अधिक महत्वपूर्ण कार्यों के लिए किया जाना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि 1957 में अपनी चिकित्सा हेतु यूरोप में प्रवास के समय उन्हें बिहार का राज्यपाल नियुक्त किया गया और जून 1957 में उन्होंने उक्त पद का कार्यभार संभाल लिया। यह वह समय था जब कांग्रेस आपत्तियों से जूझ रही थी और बिहार प्रान्त में भी अनेक समस्याएं मुंह बाये खड़ी थीं।

ज़ाकिर साहब राज्यपाल होते हुए भी अपने आपको राजभवन तक ही सीमित नहीं रख सके और इसीलिए उनकी भेंट कवियों, लेखकों, कलाकारों और शिक्षाविदों से होती रही। उन्होंने अधिकांश निमंत्रणों को भी स्वीकार किया तथा हर प्रकार के व्यक्तियों से भेंट की।

राज्यपाल होने के नाते ज़ाकिर साहब के संबंध मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों और सहयोगियों के साथ मधुर थे। इतना होने पर भी बिहार विश्वविद्यालय संशोधन विधेयक में आवश्यक संशोधन करने के लिए, जिसका मसौदा विश्वविद्यालयों के अधिकार को कम करने और उन्हें राज्य के छोटे-छोटे सरकारी विभागों का रूप देने पर आधारित था, बिहार मंत्रिमण्डल पर जोर डाला। यहां तक कि उनके सुझावों को लागू न करने पर उन्होंने राज्यपाल के पद से त्याग पत्र दे देने की धमकी भी दी क्योंकि शिक्षाविद् होने के नाते वे तत्कालीन विश्वविद्यालयों का स्तर घटाए जाने की बात भी नहीं सोच सकते थे।

इस प्रकार अपना दायित्व निभाते हुए उन्होंने बिहार के लोगों की अधिक से अधिक सेवा की और उनकी यह सेवाएं बिहारवासियों को तब तक मिलती रहीं जब तक उन्हें और अधिक महत्वपूर्ण कार्य के संपादन के लिए दिल्ली नहीं बुला लिया गया। 1962 में ज़ाकिर साहब को भारत का उपराष्ट्रपति और राज्यसभा का अध्यक्ष चुन लिया गया। 15 जून, 1962 को राज्य सभा में पहली बार प्रवेश करने पर सदस्यों द्वारा पूरे उत्साह के साथ उनका अभिनन्दन किया गया। सदस्यों ने उन्हें शुभकामनाएं दीं और अपने अपने भाषणों में उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। प्यार, सम्मान और स्नेह की उक्त अभिव्यक्तियों के उत्तर में उन्होंने कहा :

“जब मुझे इस पद की जानकारी मिली तब मुझे जो आश्चर्य हुआ उसका वर्णन आपके सम्मुख कर पाना कठिन है। मेरा नाम जब इस पद के लिए लिया जा रहा था तब मैं आश्चर्यचकित था। एकाएक मुझे इस सत्य पर विश्वास नहीं हो रहा था। इस महत्वपूर्ण पद के लिए मुझे चुना गया जिसका कारण मुझे स्वयं ज्ञात नहीं। परन्तु बहुत बड़ी संख्या में पत्र और तारों द्वारा प्राप्त बधाइयों से एक सुराग मेरे हाथ लगा है, क्योंकि पत्रों की अधिकांश संख्या देश के कोने-कोने में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में कार्यरत अध्यापकों की है, यह सब बताते जान पड़ते हैं कि मेरा चयन इस पद के लिए संभवतः शिक्षा संबंधी कार्य में मेरी गहरी आस्था मुख्य कारण है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे देश की जनता अब अपने जीवन में शिक्षा को उचित रूप में महत्व देने लगी है।”

उन्होंने सभी दलों के सदस्यों से सभा का अनुशासन एवं उसकी मर्यादा को सुरक्षित बनाए रखने में उनको सहयोग देने के लिए नम्र निवेदन किया।

ज़ाकिर साहब ने बड़े सम्मानपूर्ण ढंग से राज्य सभा की सेवा की। उन्होंने सदन में व्यवस्था बनाए रखी और उसको गरिमा प्रदान की। सदन में उन्होंने हर विरोधी सदस्य का आदर किया और सभी को अपनी अपनी बात कहने का यथेष्ट अवसर प्रदान किया। उन्होंने कभी भी उन पर अनावश्यक प्रतिबंध नहीं लगाया। कभी-कभी सदन में तनावपूर्ण वातावरण के मध्य वे कोई ऐसा रोचक प्रसंग छेड़ देते थे जिससे सदस्यों की मुस्कान और ठहाकों के बीच सदन तनावमुक्त हो जाता था। यद्यपि उनका राजनीति की ओर रुझान नहीं था तब भी उन्होंने बदलती परिस्थितियों में अपने आपको संयत रखा। सदस्यों के प्रस्तावों को नियमों के प्रतिकूल कर देने और व्यवधान उत्पन्न कर रहे सदस्यों को चेतावनी देने का सभापति को अधिकार होता है परन्तु ज़ाकिर साहब ने इन दोनों का कभी प्रयोग नहीं किया। वे प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम भाव से मिलते रहे और जब कभी भी सदन में सभापति के आसन पर होते तब वे सहज ही इसकी अध्यक्षता करते थे। उनका मन और मस्तिष्क पूर्ण रूप से प्रजातंत्रवादी था। इसीलिए उन्होंने प्रत्येक सदस्य को सरकार की आलोचना करने का अधिकार दिया। अलग-अलग राजनैतिक दलों के होने पर भी उनकी दृष्टि में सभी सदस्य

समान थे। तत्कालीन राज्यसभा के सदस्य डा. ताराचन्द ने यह स्वीकार किया कि ज़ाकिर साहब जब भी सभापति के आसन पर होते, वे दैनिक कठिन कार्य का भी अत्यधिक धैर्य के साथ निर्वाह करते थे यद्यपि कभी-कभी उनका आन्तरिक क्षोभ बाहर निकलने को होता पर वे संयत हो सदन के कार्य को अनावश्यक व्यवधान से बचा लेते थे।

जब उन्होंने 1967 में अपने पद का कार्यभार सौंपा तब राज्यसभा के हर पक्ष से हार्दिक शुभकामनाएं प्राप्त हुईं। वे उनकी विद्वता और निष्पक्षता की भूरि भूरि सराहना कर रहे थे। इस अवसर पर अपने भाषण में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि ज़ाकिर साहब ने पांच वर्ष तक सदन का संचालन ऐसे स्वाभिमान, निष्पक्षता, बुद्धिमत्ता और संयम के साथ किया जिससे प्रभावित होना सहज बात है। इसी प्रकार विरोधी सदस्यों ने भी सदन में उनकी भूमिका को एक स्वर से स्वीकारा कि उन्होंने सदैव सहयोग कर प्रतिस्पर्धी दलों के बीच संतुलन बनाए रखा।

इस अवधि में उपराष्ट्रपति ज़ाकिर साहब को अपने दो परम मित्रों, भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू और लाल बहादुर शास्त्री के निधन से गहरा आघात पहुंचा।

वास्तव में पंडित नेहरू का देहावसान ज़ाकिर साहब की निजी क्षति थी। देश विभाजन के समय में हुई उथल-पुथल के समय पंडित जी को जामिया और उसकी सुरक्षा की सदा चिन्ता बनी रही। साथ ही यह कि पंडित जी के प्रधानमंत्रित्व काल में ही ज़ाकिर साहब बिहार के राज्यपाल और भारत के उपराष्ट्रपति बने थे।

भारतीय गणतंत्र के उपराष्ट्रपति की हैसियत से उन्होंने अनेक देशों की सद्भावना यात्राएँ कीं। उन्होंने अल्जीरिया, ट्यूनिशिया, मोरक्को, कुवैत, सउदी अरब, जॉर्डन, तुर्की, ग्रीस, अफ़ग़ानिस्तान, थाईलैण्ड, कम्पूचिया, सिंगापुर, मलेशिया और अमेरिका तथा अन्य देशों की यात्रा कर मित्रता के आपसी संबंधों को और सुदृढ़ बनाया। उसके पश्चात् 1967 में राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद के चुनाव का प्रश्न आया तब डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के उत्तराधिकारी के रूप में डा. ज़ाकिर हुसैन को ही उपयुक्त पाया गया।

परिणामस्वरूप 10 अप्रैल 1967 को कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने राष्ट्रपति पद के लिए ज़ाकिर साहब के नाम का प्रस्ताव किया। पहले अवसरों पर राष्ट्रपति का चुनाव मात्र एक औपचारिकता हुआ करती थी क्योंकि कांग्रेस को संसद तथा विधान सभाओं में पूर्ण बहुमत प्राप्त था। परन्तु इस बार यह कार्य कठिन प्रतीत होता था क्योंकि कुछ प्रदेशों में विपक्षी दलों की सरकारें थीं जिन्होंने एक मत होकर भारत के मुख्य न्यायाधीश के सुब्बाराव, जिन्होंने सुप्रीम कोर्ट से पहले ही 6 मई 1967 को राष्ट्रपति पद के लिए होने वाले चुनाव हेतु अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था, को अपना प्रत्याशी बनाया। विपक्ष के निजी तथा संयुक्त प्रयासों के बावजूद ज़ाकिर साहब अपने प्रमुख प्रतिद्वंद्वी सुब्बाराव की तुलना में भारी मतों से विजयी हुए। उन्हें 4, 71, 244 मत प्राप्त हुए जबकि सुब्बाराव को 3, 63, 971 मत मिले थे।

आश्चर्य तो यह है कि जब चुनाव अभियान अपनी चरम सीमा पर था तब ज़ाकिर साहब अमेरिका के मिशिगन विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण दे रहे थे। जब उनसे पूछा गया कि वे अमेरिका में होते हुए भी चुनाव की दौड़ में भाग ले रहे हैं तो उत्तर देते हुए ज़ाकिर साहब ने कहा कि “हम लोग भारत में चुनाव में खड़े होते हैं, दौड़ते नहीं (We in India only stand and do not run)” वे चुनाव के तीन दिन पूर्व ही भारत लौटे थे।

राष्ट्रपति के चुनाव में ज़ाकिर साहब की विजय से चारों ओर खुशी की लहर दौड़ गई। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के शब्दों में, “ज़ाकिर साहब के जीवन में लिए गए सेवाव्रत के परिणामस्वरूप आज उन्हें राष्ट्रपति पद के सर्वोच्च आसन पर देखा जा रहा है। यह उनके प्रेम, प्यार और उनकी अमूल्य सेवाओं के साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की सद्भावनाओं का सुफल है।” इतना ही नहीं विदेश में ज़ाकिर साहब की विजय को धर्मनिरपेक्षता की विजय माना गया। 13 मई, 1967 को उन्होंने भारतीय गणतंत्र के तीसरे राष्ट्रपति के रूप में शपथ ली और इस अवसर पर अपने उद्बोधन में कहा :

“मैं आपसे केवल यही कह सकता हूँ कि राष्ट्रपति भवन में मेरा प्रवेश मानवता के प्रति विनम्र समर्पण की भावना से हुआ। इस संविधान में नये गणतंत्र की जनता को अपना इतिहास रचने के लिए प्रथम बार स्वतंत्रता दी गई और इसी भारतीय संविधान के प्रति निष्ठा और उत्तरदायित्व के निर्वाह की मैंने शपथ ली है। यह नवीन स्वतंत्र देश उन लोगों का है जिन्होंने सहस्रों वर्षों तक संघर्षरत रहकर इसे स्वाधीनता दिलाई और विविध जातियों के होते हुए भी एक दूसरे के प्रति परम सहयोग की भावना से निहित उन्होंने इन शाश्वत मूल्यों को स्थापित किया। वे मूल्य निश्चय ही आश्चर्यचकित कर देने वाले हैं। परिस्थितियों के अनिवार्य परिवर्तन के कारण इनमें से कुछ मूल्यों के प्रति हमारी असहमति हो सकती है परन्तु शाश्वत मूल्य सदैव सभी के लिए समान रूप से मान्य होते हैं जिनकी छाया में भारतीय जनता अपेक्षाकृत अधिक नवीन अनुभूतियों को ग्रहण कर सकेगी। मैं उन मूल्यों के लिए सेवा करने की शपथ लेता हूँ। अतीत अचल और मृत नहीं होता, यह जीवंत और बहुआयामी है तथा सदैव हमारे वर्तमान और भविष्य को निर्धारित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

“अनवरत नवीनता राष्ट्रीय चरित्र और संस्कृति के विकास की प्रक्रिया है। यह कार्य शिक्षा का है क्योंकि मैंने इस नवीनता को शिक्षा से जोड़कर देखा है। मैं अपनी इस धारणा के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ कि यदि मुझे इस पद के लिए उपयुक्त पाया गया है तो इसका एकमात्र कारण जनता की शिक्षा के प्रति मेरा गहरा लगाव है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास और गुणवत्ता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। इसलिए मैं अतीत की संस्कृति के प्रति सत्यनिष्ठ हूँ चाहे इसका उद्गम स्रोत कहीं भी हो और चाहे जिसने भी पल्लवित करने में महत्वपूर्ण योग दिया हो। मैं अपने देश की संपूर्ण संस्कृति की सेवा करने की पूरी आस्था और निष्ठा से शपथ लेता हूँ। मैं बिना क्षेत्र और भाषा भेदभाव के संपूर्ण देश की सेवा का व्रत लेता हूँ। मैं देश की शक्ति और समृद्धि के लिए कार्य करने तथा जाति, धर्म और रंगभेद से ऊपर उठकर जनहित में अपनी सेवाएं अर्पित करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। सम्पूर्ण भारत मेरा घर है और इसके निवासी मेरा परिवार हैं। देशवासियों ने कुछ समय के लिए मुझे अपना मुखिया चुना है। देश को शक्तिशाली, सुन्दर बनाने के लिए जिससे इसके निवासी सत्कर्मों से जुड़े रहकर सौहार्द भाव से रह सकें, मैं पूरी सच्चाई और निष्ठा के साथ प्रयत्नशील रहूँगा। परिवार विशाल है और दिनों-दिन सुविधा-असुविधा का विचार किए बिना निरंतर बढ़ रहा है। हम सभी निर्बाध रूप से देश को समृद्ध तथा खुशहाल रखने के लिए अपने अपने क्षेत्रों में अपने अपने सामर्थ्य के साथ जुट जाएं। हमारे समक्ष कार्य के उत्तरदायित्व इतने हैं कि हम में से कोई भी निष्क्रिय नहीं रह सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक विरासत और अपने राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने के लिए निर्विवाद रूप से निरंतर कार्यरत रहे।.....

“....राज्य मात्र अधिकार का संगठन न होकर हमारे लिए एक नैतिक संस्था भी है। यह हमारे राष्ट्रीय चरित्र का अनिवार्य अंग है जिसे हमने महात्मा गांधी जैसे महान नेताओं द्वारा संचालित स्वतंत्रता संग्राम से विरासत में प्राप्त किया है। इस शक्ति का उपयोग कर नैतिक उद्देश्यों से जितनी तत्परता से हम कार्यों में जुटेंगे, हमारी शांति उतनी ही सुदृढ़ और स्थाई होगी। हमारी राष्ट्रीय नीति विस्तारवादी अथवा साम्राज्यवादी न होकर सदैव उदारवादी रही है तथा न्यूनतम मानवीय अस्तित्व का बोध कराने में सक्षम रही है। यह सदैव बौद्धिक आलस्य और सामाजिक न्याय की भिन्नता के विरुद्ध संघर्ष करेगी। यह संकीर्णता और स्वार्थपरता को निर्मूल करेगी और यह ऐसा सब कुछ करेगी जिससे नैतिक उत्थान तथा तज्जन्य आनन्द की प्राप्ति हो....।

“हम अपने राष्ट्रीय जीवन में, शक्ति के साथ नैतिकता, प्रौद्योगिकी के साथ नीति, कार्य के साथ मनोयोग, पाश्चात्य के साथ पौराण्य और सिगमन फ्राइड और महात्मा बुद्ध के बीच सामंजस्य की स्थापना का लक्ष्य प्राप्त करेंगे। शाश्वत और अस्थायी दोनों बातों को दृष्टि में रखकर ही कार्यकुशलता और निपुणता के बल पर अपने ध्येयपूर्ति की चेतना को जगाएंगे।

“मुझे अपनी जनता पर इस बात का पूर्ण विश्वास है कि वे इस निर्धारित लक्ष्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार की कोर-कसर न उठा रखेंगे।

“यदि मैं अपने देश के गरिमामय ध्येय की प्राप्ति के लिए कुछ भी कर पाया तो यह मेरा सौभाग्य होगा।”

स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशकों के भीतर ही अल्पसंख्यक वर्ग के एक व्यक्ति का देश के ‘प्रथम नागरिक’ के सर्वोच्च पद पर चुना जाना अनेक देशों के लिए आश्चर्य का विषय था। कांग्रेस द्वारा मनोनीत किये जाते समय एक जर्मन पत्रकार ने टिप्पणी की थी कि यूरोप में अब भी बहुत से लोग सोचते हैं कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच घृणा और शत्रुता का संबंध है। इसका उत्तर देते हुए ज़ाकिर साहब ने कहा था :

“यह धारणा निराधार है। भारत एक ऐसा धर्मनिरपेक्ष देश है जहां जाति, रंग और धार्मिक भेदभाव के बिना कोई भी नागरिक सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकता है। भारत में अल्पसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधि, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं.....।”

देश के राष्ट्रपति के पद पर ज़ाकिर साहब के चुने जाने पर भारतीय धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुंच गई।

12 फरवरी, 1968 को राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन ने संसद के दोनों सदनों को संबोधित किया। अपने अभिभाषण में सफलताओं और असफलताओं का लेखा जोखा प्रस्तुत करने के साथ साथ उन्होंने भविष्य के लक्ष्य को भी निर्धारित किया। शांतिपूर्ण विचार-विमर्श के उपरान्त विविध आयामी समस्याओं के स्थाई समाधान के उद्देश्य से सदस्यों से पूर्ण सहयोग का आग्रह किया। उनके विचार में तर्कसंगत वादविवाद और परस्पर समन्वय ही प्रजातंत्र की कसौटी है।

उन्होंने हिंसा जैसी अनेक दूषित भावनाओं की भर्त्सना की। हिंसा हमारे प्रजातंत्र को निर्बल करके राष्ट्रीय एकता की नींव हिला सकती है। वे चाहते थे कि राज्यों और केन्द्र के बीच परस्पर सहयोग की भावना से कार्य किया जाए। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि शांति की दिशा में किये जाने वाले हमारे प्रयत्न, अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध और सहयोग ही हमारी विदेश नीति के लक्ष्य होंगे जो हमारे प्रबुद्ध राष्ट्रीय हित के साथ साथ विद्यमान रहे हैं। यह उनकी दृढ़ मान्यता थी कि सह अस्तित्व की भावना ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की दिशा में रचनात्मक कार्य करने में सक्षम है। अपने अभिभाषण का समापन करते हुए उन्होंने कहा :

“अनेक शताब्दियों के पश्चात् भारतीय जनसमुदाय बहुआयामी परिवर्तन की प्रक्रिया के पथ पर अग्रसर है। सभी लोगों की अभिलाषाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप अपने दायित्व का निर्वाह हमारे लिए एक चुनौती है। देश की प्रमुख समस्याओं का स्थान दलगत राजनीति से ऊपर है। राष्ट्रीय महत्व और उसके हित में सरकार प्रत्येक राजनैतिक दल के साथ मिल बैठकर मंत्रणा करेगी।”

बलिदानों से अर्जित स्वतंत्रता को ज़ाकिर साहब हर मूल्य पर सुरक्षित रखने के लिए उत्सुक थे और इसकी सुरक्षा के लिए देश की शक्तिशाली सेना के पक्षधर थे। उनकी धारणा थी कि हिमालय विदेशी आक्रमणकारियों से भारत की सुरक्षा में कभी प्राकृतिक प्रहरी समझा जाता था परन्तु 1962 के चीनी आक्रमण के पश्चात् प्रत्येक भारतीय का यह दायित्व है कि वह स्वयं भारत का प्रहरी बनकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हिमालय का प्रहरी बने। भारतीय सशस्त्र सेनाओं के कल्याण और उनकी कार्यकुशलता में उनकी विशेष अभिरुचि थी और उन्होंने राष्ट्रीय रक्षा अकादमियों को सक्षम बनाने हेतु विशेष ध्यान दिया, क्योंकि उनके विचार में सेना के तीनों अंगों की प्रथम पाठशाला अकादमियां ही थीं।

राष्ट्रपति के रूप में डा. ज़ाकिर हुसैन ने भारत की जनता और अन्य राष्ट्रों के साथ सौहार्द और मैत्री को और अधिक बढ़ावा दिया। जुलाई 1968 में उन्होंने सोवियत रूस की यात्रा की जहां सैकड़ों राष्ट्रीयताओं, भाषाओं, संस्कृतियों और परम्पराओं के लोगों ने एक सशक्त राष्ट्र के रूप में, मानवीय उत्थान के लिए सभी क्षेत्रों में जो उपलब्धियां प्राप्त की थीं, उनसे वे अति प्रभावित हुए।

उनके राष्ट्रपतित्व काल में अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने भारत की यात्रा की। जाम्बिया के राष्ट्रपति केनेथ कोन्डा, श्रीलंका के गवर्नर जनरल डब्ल्यू गोपालवा, यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो, भूटान के महाराजा, इथोपिया के नरेश हैल सिलासी, ईरान के शाह रज़ा शाह पहलवी, इत्यादि विशिष्ट अतिथियों के सत्कार का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। उन सबसे विचार विमर्श का सुफल यह हुआ कि इन देशों के साथ भारत के मैत्री संबंध और सुदृढ़ हुए।

ज़ाकिर साहब एक सुविज्ञ अध्यापक होने के कारण पुस्तकों, अध्यापकों और विद्यार्थियों को सर्वोपरि मानते थे। एक लब्ध प्रतिष्ठ लेखक होने के नाते यदि उनकी प्रथम पुस्तक *कैपिटलिज्म: एन एसे इन अन्डरस्टैंडिंग* उन्हें एक अच्छे अर्थशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित करती है तो दूसरी तरफ पुस्तक *एजूकेशनल रिकन्सट्रक्शन आफ इंडिया* उनका परिचय एक विद्वान शिक्षाविद् के रूप में कराती है। उन्होंने शिक्षा प्रणाली को समुन्नत करने तथा राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इसे माध्यम के रूप में अधिक महत्व दिया। उनके भाषण, लेख, दीक्षांत समारोहों के उद्बोधनों तथा अन्य कृतियों को दूसरी भाषाओं में भी अनूदित किया गया। उनके दीक्षांत भाषणों को *डायनामिक यूनिवर्सिटी* शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया। प्लेटो द्वारा रचित *रिपब्लिक*, *फ्रेड्रिक लिस्ट की नेशनल सिस्टम आफ इकोनामी* और *एडविन केनन की एलिमेंट्री प्रिन्सिपल्स आफ इकानामिक्स* ग्रंथों का उर्दू में अनुवाद कर ज़ाकिर साहब ने उर्दू को और अधिक सम्पन्नता प्रदान की। इस भाषा में अनूदित ये ग्रंथ आज भी सर्वमान्य हैं। ज़ाकिर साहब द्वारा अनूदित *रिपब्लिक* पर टिप्पणी करते हुए ज़ाकिर साहब के एक परम मित्र ने ठीक ही कहा था कि प्लेटो यदि उर्दू के विद्वान होते तो वे भी ठीक इसी भाषा का प्रयोग करते।

अपनी पुत्री रुक़य्या रैहाना के नाम पर ज़ाकिर साहब ने *अब्बु खां की बकरी*, *अकाब*, *अन्धा घोड़ा*, *उसी से ठंडा उसी से गर्म*, *कछुआ तथा खरगोश*, आदि अनेक कहानियां बालकों के लिए लिखीं, इन्हें अंग्रेजी में भी अनूदित किया गया। वास्तव में बालकों के लिए लिखना उन्हें अधिक रुचिकर लगता था। अपने अनुभव व्यक्त करते हुए उन्होंने एक बार कहा था :

“वर्षों पहले जो कहानियां मैंने बच्चों के लिए लिखी थीं, मुझे पसंद आईं। मुझे याद है कि लिखने के पश्चात् जब मैंने एक कहानी को पढ़ा तो मैं चीख पड़ा था।”

उन्होंने बच्चों के लिए स्वयं तो लिखा ही दूसरों को भी लिखने के लिए प्रेरित किया।

ज़ाकिर साहब पुस्तकों को श्रेष्ठ मित्र और अच्छा साथी भी मानते थे। उन्होंने एक बार कहा भी था:

“वास्तव में पुस्तक आज के मानव का एक सच्चा साथी ही नहीं वरन् एक अच्छा मित्र भी है। जब तक पुस्तक को पूर्ण तल्लीनता से न पढ़ा जाय तब तक वह मूक होती है। वह आपकी स्थाई दृष्टि के लिए प्रतीक्षारत रहती है। पुस्तकों में जो कुछ अपना है, उस सब को वह आप पर न्यौछावर करने के लिए सदैव तत्पर है। वह दिशा देती है, परामर्श देती है, प्रेरित करती है और प्रताड़ित करती है और फिर वह तुरंत विराम पा लेती है। वह व्यर्थ के प्रश्नों और तनावों से भी उत्तेजित नहीं होती। वह तो सदा जीवन्त मुस्कान बिखेरती रहती है। हां, पुस्तक हमारी अद्भुत संगिनी है। जो लोग अकेलापन अनुभव करते हैं उनकी यह अद्भुत सहगामिनी और जिज्ञासुओं के लिए विलक्षण अध्यापक और आनन्द का चमत्कारी प्रेरणास्रोत भी है।”

ज़ाकिर साहब ने देश में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों को समृद्धि दी। उन्होंने हर क्षेत्र के कलाकारों को प्रोत्साहन दिया क्योंकि ये ही हमारी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक हैं। संगीत सम्मेलनों और सभाओं, साहित्यिक गोष्ठियों, कला प्रदर्शनियों, पुस्तक मेलों और नाटकों, आदि को समृद्ध बनाने में उनकी गहन रुचि थी।

उनके राष्ट्रपतित्व काल में अमर कवि गालिब की शताब्दी समूचे देश में मनाई गई। गालिब उनके प्रिय कवि थे जिनकी शायरी ने उन्हें प्रभावित किया और जिन्हें वे अक्सर उद्धृत करते थे। गालिब की जिस बात ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया, वह यह थी कि वे कभी घिसी पिटी लीक पर नहीं चले।

ज़ाकिर साहब को 1954 में पद्म विभूषण तथा 1963 में भारत रत्न से सम्मानित किया गया। अलीगढ़, इलाहाबाद, कलकत्ता और दिल्ली विश्वविद्यालयों ने उन्हें डी.लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

ज़ाकिर साहब को मनोरंजन के लिए बागवानी प्रिय थी। जहां भी और जिस पद पर भी वे रहे, उन्होंने उस स्थान को उद्यान के रूप में परिवर्तित कर दिया। पुष्पों में गुलाब उन्हें बहुत प्रिय था। वे अपनी शेरवानी पर सदा गुलाब लगाया करते थे। उन्होंने विश्व के विभिन्न भागों से गुलाब की अनेक किस्मों का संग्रह किया था। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, पटना का राजभवन, नई दिल्ली स्थित उप-राष्ट्रपति भवन, आदि जन-साधारण को उनकी गुलाब प्रियता का आज भी बोध कराते हैं। उन्होंने राष्ट्रपति भवन के मुगल उद्यान को और अधिक सुधारा, संवारा और विविध प्रकार के गुलाब लगवाये जो आज भी खिलकर सुगन्ध बिखेरते हैं।

ज़ाकिर साहब को पत्थर भी प्रिय थे। उनके संग्रह में कंकड़, प्रस्तर और जीवाश्मों के दुर्लभ नमूने थे जिन्हें उन्होंने पृथ्वी के अनेक भागों से एकत्रित किया था। उनसे किसी ने हंसी में पूछा कि उन्हें पत्थर क्यों प्रिय हैं तो तुरन्त उत्तर मिला कि, “यह बोलते नहीं और शान्त रहते हैं।” एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा :

“इन पत्थरों से अमूल्य अन्य कोई वस्तु नहीं हो सकती। न तो वे किसी को धोखा देते हैं और न ही किसी की शिकायत करते हैं, उनकी न तो किसी से शत्रुता होती है और न वे किसी के अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। न तो वे अपनी वास्तविकता छिपाते हैं और न ही किसी की गोपनीयता को भंग करते हैं।”

ज़ाकिर साहब ने विश्व के विभिन्न भागों से हस्तलिपि के नमूने भी संग्रहीत किए। निजी तौर पर वे पश्चिमी एशिया के लिपिकारों से मिले और उनकी कला के नमूने एकत्रित किए। वास्तव में इस कला को उन्होंने जामिया में भी प्रोत्साहित किया। उन्हें अच्छे कलाकार सदा प्रिय रहे तथा उत्तम कृतियों के वे प्रशंसक थे। जहां कहीं भी वे जाते कला वीथियों का भ्रमण कर आकर्षक चित्र खरीद लेते। एक प्रदर्शनी में प्रख्यात चित्रकार एम.एफ. हुसैन को देखते ही उन्हें संबोधित कर उन्होंने कहा, “इस नाचीज़ को भी हुसैन कहते हैं।”

वे बड़ों का आदर करते और सबके प्रिय थे। उन्होंने अमीर-गरीब और ऊंच-नीच के बीच कभी कोई भेदभाव नहीं रखा। जब भी वे उपराष्ट्रपति भवन से जामिया मिल्लिया की मस्जिद में ईद की नमाज़ अदा करने के लिए जाते तो वे सबसे मिलते और जामिया नगर में अपने पूर्व निवास के सर्वेन्ट क्वार्टर में रह रही वृद्धा नौकरानी का आशीर्वाद लेना कभी न भूलते। एक बार जब वे ईद के अवसर पर जामिया में लोगों से घिरे खड़े थे तब उन्होंने देखा कि मकतबा जामिया का वृद्ध ड्राईवर अकेला एक कोने में सिमटा खड़ा है। उस पर दृष्टि पड़ते ही उसी समय वे उससे गले मिलने के लिए लपके और कहने लगे, “क्या आपको मेरी शुभकामनाएं स्वीकार नहीं?”

राष्ट्रपति बनने के बाद ज़ाकिर साहब को सुब्बा बनिये का एक शुभकामनाओं का पत्र मिला जो कभी उन्हें और अन्य शिक्षकों को, जब जामिया करोल बाग में थी, दैनिक उपयोग की वस्तुएं उपलब्ध कराता था। ज़ाकिर साहब ने तुरन्त अपने ड्राइवर को करोल बाग जाकर उसे राष्ट्रपति भवन लाने को भेजा। जब सुब्बा को ज्ञात हुआ कि भारत के राष्ट्रपति ने उसे निमंत्रित किया है तब उसके हर्ष की सीमा न रही। वह कुछ समय तक राष्ट्रपति के साथ रहा, चाय पी तथा उनके साथ फोटो खिंचवा कर उनसे विदा ली। ज़ाकिर साहब स्वयं उसे विदा करने द्वार तक गये। जब उनके अंगरक्षक ने उन्हें सीमा रेखा को पार करने से सावधान किया तो उन्होंने कहा, “आपका नयाचार केवल पांच वर्षों के लिए सीमित है और मेरा उसके साथ जीवन भर का संबंध है। यदि सुब्बा ने मुझे दैनिक उपयोग की वस्तुएं उधार न दी होतीं तो आज आपका यह राष्ट्रपति इस भवन में रहने के लिए जीवित न रहा होता।”

उनके मन में दूसरों की प्रसन्नता का विचार सदैव बना रहता था। एक बार वे जामिया के विद्यालय में छात्रों को पुरस्कार वितरण कर रहे थे। इस अवसर पर उन्हें एक पर्ची मिली जिसे पढ़कर उन्होंने जेब में रख लिया। समारोह समाप्त होते ही वे अपने निवास पर पहुंचे जहां उनकी बीमार पुत्री अपना पार्थिव शरीर त्याग चुकी थी। यह पूछे जाने पर कि पर्ची मिलते ही वह समारोह छोड़कर तुरंत क्यों नहीं चले आए, उन्होंने कहा, “मैं बच्चों को उस आनन्द और प्रसन्नता से कैसे वंचित करता जो उनके चेहरों पर बिखरी हुई थी।”

ज़ाकिर साहब की शिक्षा का तरीका अर्थवान था। उनके कार्यकलाप लोगों को उनकी त्रुटियों का अनुभव कराने वाले होते थे। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में खुले बटनों की अचकन पहनने का चलन था जो ज़ाकिर साहब को सुहाता नहीं था। वे सलीके से पोशाक पहनने के हिमायती थे। एक बार कुछ विद्यार्थी खुली हुई अचकन पहने उनसे मिलने आए तब विद्यार्थियों से वार्तालाप करते हुए वे उनके बटन भी लगाते रहे। इसके पश्चात् विद्यार्थियों ने कभी भी अपनी अचकनों के बटन खुले नहीं रखे।

ज़ाकिर साहब सौंदर्यप्रिय व्यक्ति थे। वे अपने कार्य को शालीनता और सुन्दरता से करने के आदी थे। एक बार जब सांप्रदायिक दंगों के दौरान जामिया को छोड़ने का निश्चय किया गया तब ज़ाकिर साहब ने कहा सभी लोग अपने-अपने घरों को सुव्यवस्थित ही छोड़ कर जाएं जिससे इनमें प्रवेश करने वाले नए व्यक्ति समझें कि उनसे पहले के निवासी सौंदर्यप्रिय थे।

ज़ाकिर साहब बहुत ही उदार थे। जब भी कोई उनसे सहायतार्थ मिलता, वे उसकी सहायता अवश्य करते और वे उनकी भी सहायता करते थे जिनको आवश्यकता तो होती परन्तु कह नहीं पाते थे। उन्होंने बहुत से लोगों की उच्चशिक्षा के लिए विदेश जाने की संस्तुति कर उनके वहां रहने के लिए आर्थिक प्रबंध भी किये। उन्होंने अपनी पत्नी के पुरखों के क़ायमगंज स्थित निवास को उनके पारिवारिक सेवकों के नाम कर दिया जो अब भी वहीं रह रहे हैं।

विश्व बंधुत्व और प्रजातंत्र की हमारी परंपरा में जो भी आदर्श, अच्छा और मानने योग्य है उसके मूर्तरूप ज़ाकिर साहब राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। वे जन्मजात शिक्षक थे और धर्मनिरपेक्षता के आदर्श के लिए कृतसंकल्प थे। देश की आम जनता की बेहतरी के लिए जीवन समर्पित करने वाले ज़ाकिर साहब ने अपनी किसी भी असुविधा की परवाह किए बिना उनके लिए कार्य किया।

उनके देहावसान से कुछ समय पूर्व एक केन्द्रीय मंत्री ने जब यह सुना कि राष्ट्रपति असम, नागालैण्ड और नेफ़ा की यात्रा पर जा रहे हैं तब उक्त मंत्री ने राष्ट्रपति के वहां पर जा कर जोखिम उठाने पर चिन्ता प्रकट की। तब उन्होने मुस्कराते हुए कहा कि, “वहां पर मेरे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

असम की यात्रा के समय 25 अप्रैल, 1969 को गुवाहाटी में महात्मा गांधी विजिटिंग प्रोफेसरशिप का उद्घाटन करते हुए गुवाहाटी विश्वविद्यालय में दिया गया भाषण उनके जीवन का अन्तिम भाषण था। भारत में शिक्षा प्रणाली के सुधार के लिए गांधी दर्शन पर बोलते हुए उन्होने तीन प्रमुख शर्तें रखीं: “शारीरिक श्रम का सम्मान, राष्ट्रीय या सामाजिक सेवा और विश्वविद्यालय स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करना।”

ज़ाकिर साहब जीवन पर्यन्त इन्हीं आदर्शों को आकार देने का प्रयत्न करते रहे। गुवाहाटी विश्वविद्यालय का यह उद्घाटन समारोह शिक्षा मूल्यों का वह अन्तिम उद्बोधन था जिसका उन्होने जीवनपर्यन्त पालन किया।

यात्रा से लौटने के बाद, चिकित्सकों का एक दल 3 मई को उनकी स्वास्थ्य परीक्षा के लिए आया ही था कि सहसा ज़ाकिर साहब की हृदय गति रुक गई और उन्होने पार्थिव शरीर त्याग दिया। उनके पार्थिव शरीर को जामिया की उसी संस्था की माटी को अर्पित कर दिया गया जिसकी उन्होने दो दशकों तक प्राणपण से सेवा की थी। उनकी कब्र के एक ओर केन्द्रीय ग्रंथागार और दूसरी ओर उच्च - माध्यमिक विद्यालय स्थित है।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते समय उनके व्यक्तित्व के कुछ गुणों का वर्णन करते हुए कहा :

“भारतीय सामासिक संस्कृति के वैभव से सम्पन्न उनके व्यक्तित्व ने हमारे जन-जीवन को अपने कर्म और वाणी से और अधिक समुन्नत किया। जो गुण उनमें विद्यमान थे उनसे और उनके द्वारा एक सामाजिक कार्यकर्ता और शिक्षाविद् के रूप में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए रचनात्मक कार्यों से ज़ाकिर साहब ने जो विशिष्टता अर्जित की है वह हमारी भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक है।”

राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के शब्दों में :

“...वे निरंतर अथक प्रयत्नों और कार्यों से सदैव अपनी प्रशान्ति और उदारता बनाए हुए कर्मयोगी कहे जाएंगे। वे दार्शनिक मात्र ही नहीं थे वरन् उत्साह, समझ और भ्रातृभाव से भरपूर एक निष्ठावान् व्यक्ति भी थे; वे सच्चे अर्थों में अजातशत्रु थे।”

उनके अभिन्न मित्र, प्रोफेसर एम. मुजीब की दृष्टि में, “राष्ट्र और उसकी जनता के प्रति उनकी निष्ठा अबाध थी। उनका समाजवादी दृष्टिकोण आधुनिक युग के अनुरूप केवल बौद्धिक स्तर का ही नहीं था। वे एक सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय तथा मानवता के प्रति बिना किसी प्रतिफल की भावना के तत्पर रहे और इस आदर्शपूर्ति को वे सर्वोपरि मानते थे।” के.जी. सैयदैन के शब्दों में, “...वे जीने की कला में किसी कलाकार से कम नहीं थे। उनके व्यक्तित्व में एक ऐसी अद्वितीय निष्ठा और सम्पूर्णता थी जो छोटा अथवा बड़ा जो भी कार्य उन्होने किया, उसमें अपने आप व्यक्त हुई।”

ऐसे थे हमारे प्रिय ज़ाकिर साहब! समसामयिक लोगों के मध्य उच्च व्यक्तित्व, ऊंचा कद, आकर्षक दृष्टि, गौरवर्ण, गोल चेहरे पर कटी लछी दाढ़ी, आंखों पर चश्मा, सफेद खद्दर धारी, सादा जीवन और उच्च विचार के सदियों पुराने दर्शन के प्रतीक स्वरूप, दृढ़ निश्चयी, निःस्वार्थ, विद्वान और धर्मनिरपेक्ष। ज़ाकिर साहब एक समर्पित आत्मा थे। उनका जीवन धर्मनिरपेक्षता के सार तत्वों की, जो आज भी हमारे बीच से बच निकलते हैं, खोज करने वालों के लिए प्रतिस्पर्धा के योग्य है।

DR. ZAKIR HUSAIN: A PROFILE

The name of Dr. Zakir Husain is nostalgically linked with the place named Qaimganj, a township in the Farrukhabad district of Uttar Pradesh. Founded in 1713 by a Pathan chieftain, Mohammad Khan Bangash, after his son Qaim Khan, it is mainly inhabited by Pathans whose main occupation once was soldiery. One such early Pathan settler in the township was Husain Khan, respectfully known as *Madab Akboon* or Big Teacher. His son Ahmad Husain, grandson Mohammad Husain and great grandson Ghulam Husain were all soldiers of repute.

However, Ghulam Husain's son Fida Husain Khan had a completely different temperament. He was devoid of the traditional martial traits of his ancestors. In 1888 at the age of 22, he shifted to Deccan in search of new avenues. First, he started as a businessman but later switched over to the legal profession at Aurangabad. He also set up a publishing house and brought out a law journal, *Aain-i-Deccan*. Finally, he settled in Hyderabad in 1892 and earned enormous wealth as a law practitioner and an author of several books on jurisprudence. He constructed a house in Begam Bazar on a huge plot of land. It was here that he was blessed with the third of his seven sons, named Zakir Husain, on February 8, 1897.

Brought up with ample love and care, the young Zakir received his early education at home under watchful paternal eyes. But this was soon disrupted by the untimely death of Fida Husain Khan when Zakir was barely nine years old.

This grave tragedy forced the family to shift from Hyderabad to their ancestral home in Qaimganj. The responsibility of Zakir Husain's upbringing then devolved on his mother, Naznin Begum, who arranged the best possible education for all her children of whom Muzaffar Husain and Abid Husain were the first two in line. Both of them later died of tuberculosis. Zakir was the third child. Zahid Husain and Jafar Husain were the fourth and fifth who, too, fell victim to the then incurable tuberculosis in the full bloom of their youth. Yusuf Husain and Mahmud Husain who were the sixth and seventh in the line succeeded in making a mark in life and created a place for themselves in society, particularly, in the field of education.

However, what proved to be of abiding influence on young Zakir was Naznin Begum's multi-faceted personality. Herself a model of womanly qualities, she instilled in Zakir a sense of modesty, obedience and reverence for elders. Later in life he recalled how her benign personality made him conscious of his duties towards his fellowmen irrespective of caste, colour or creed. His views were further moulded by the catholicity of the wandering *sufi* saint Hasan Shah, a disciple of Shah Talib Husain Mujeeb, universally venerated for his spiritualism. From him he imbibed the appreciation of dignity of labour, trait of generosity as well as a training in simple living and high thinking.

After completing the elementary education, Zakir Husain sought admission to the fifth class at the Islamia High School at Etawah in U.P., an institution established by Maulavi Basheer Ahmed, a companion of Sir Syed Ahmad Khan. Here Zakir Husain came in close contact with

several nationalist teachers like Head Master Syed Altaf Husain who aroused in him patriotic and nationalistic feelings. Not only did he regularly attend his classes and participate in debates and essay-writing competitions and other co-curricular activities but he also won several prizes for his efforts. In discussions with his teachers on current topics of national and international importance, he kept himself abreast of events both at home and abroad. About this time he developed great concern for the future of Islamic countries, especially Turkey which was the seat of the *Khilafat* and was pillaged by the Balkan wars. He regularly acquainted his schoolmates with news from *The Pioneer* and thus made them aware of the happenings on the war front. Deeply anguished, he delivered speeches at the mosque after Friday prayers and even organised, at this young age, a campaign for funds to help the Turkish cause. This was a manifestation of his righteous indignation at the political skulduggery committed against Turkey, the seat of the Islamic Caliphate. Zakir's patriotic fervour was further fanned by the writings of Maulana Abul Kalam Azad and Mohammad Ali who had launched a regular campaign among the Indian Muslims through their respective journals, *Al-Hilal* and *The Comrade*.

Zakir Husain was hardly fourteen when he lost his mother and several other members of his family in a plague epidemic that ravaged the country in 1911. The blow was powerful enough to shatter the spirits of any mortal but the young Zakir "let the thunder pass and plunged in thought again". As a true Pathan, he maintained his poise and pursued his studies vigorously.

In 1913, when he was sixteen, he passed the Matriculation Examination creditably, with distinction in classical subjects. After completing his studies at Etawah, he joined the Muhammadan Anglo-Oriental College at Aligarh where he passed the pre-medical Intermediate Examination with Biology, with a view to studying medicine and entering the medical profession for which he had a great fascination. For this he moved over to Lucknow to take up the B.Sc. course at the Christian College. However, while preparing for the preliminary scientific examination in Organic Chemistry, he fell ill and had to discontinue his studies for a full year. This setback left him with no alternative but to switch over to arts and join again the M.A.O. College, Aligarh, which was then affiliated to the Allahabad University.

Zakir Husain became equally popular with the students and teachers and was elected Vice-president of the Students Union. He participated in the debate competitions of the college and won prizes. He was awarded the Harold Cox and the Cambridge prizes, the highest distinction of his times, for his debating skill.

Graduating in 1918 with Philosophy, English Literature and Economics, he took up Law and Economics as post-graduate disciplines. Meanwhile, he was also appointed as a Junior Lecturer at the College. While still an undergraduate, he was married to Shahjahan Bano who, in times to come, became his true life companion, sharing all the joys and sorrows of life.

The First World War was followed by a political upheaval in the country. After the victory in the war, the British let loose an era of repression. The people's agitation against the Rowlatt Act resulted in the unspeakable atrocities in the Punjab. Thereafter, the Khilafat non-cooperation movement created waves of resentment throughout the country. It was at this hour that Gandhiji gave a clarion call to his countrymen not to cooperate with the British Government. Spelling out his non-violent, non-cooperation programme, he exhorted the students to come out of the institutions which were owned, aided or controlled by the government and help to establish in their place national educational institutions. Accompanied by the Ali Brothers, he visited Aligarh and appealed to the students of the Muhammadan Anglo-Oriental College to leave the institution and join the national movement. This was followed by another visit of the Ali Brothers and other national leaders who, too, repeated the same call. While others dithered, Zakir Husain responded to the appeal spontaneously. The college principal strove in vain to dissuade him and

even offered him the post of Deputy Collector if he did not participate in the movement. For Zakir, however, the call of the motherland held a greater charm than the temptation of a prized government post. In his own words:

“It was the first conscious decision of my life. Perhaps the only one I have ever taken. The rest of my life has but flowed from it.”

Thus, he left the Muhammadan Anglo-Oriental College with nearly three hundred students who formed the National Muslim University christened as the Jamia Millia Islamia. It was inaugurated on October 29, 1920 in Aligarh by Shaikh-ul-Hind Maulana Mahmud Hasan of Deoband.

Hakim Ajmal Khan was appointed the first *Amir-i-Jamia* (Chancellor) of the Jamia Millia Islamia, a position he held until his death in 1927. Maulana Mohamed Ali became the first *Sbaikh-ul-Jamia* (Vice-chancellor) and was succeeded by Abdul Majeed Khwaja at a later date when the former was interned for his nationalist activities. Zakir Husain, who was appointed a member of the teaching faculty, became a member of its Executive Committee as well as the Academic Council. He was also in-charge of the Jamia publications. In these capacities he worked till he left for Germany in 1922 for higher studies. In fact, he was compelled by his friend K.A. Hamied to go abroad for further studies and research.

Zakir Husain had a passport which was valid only for England. He proceeded in January, 1922 but did not go to Britain and instead disembarked at Trieste. He travelled through Austria to Germany by obtaining a tourist visa. At the suggestion of Mrs. Sarojini Naidu's brother Virendranath Chattopadhyaya, he joined a course in the German language and eventually got himself registered as a research student at the University of Berlin.

In Germany, Zakir Husain developed a life-long friendship with Muhammad Mujeeb and Abid Husain and persuaded them to serve the Jamia on their return to India. Similarly, he became friendly with Miss Gerda Philipsborn who also pledged to serve the Jamia. Later, when he was informed that Jamia was facing a financial crisis threatening its closure, Zakir Husain telegraphically informed its Chancellor Hakim Ajmal Khan in these memorable words:

“I and some of my friends are prepared to dedicate our lives to the Jamia. Jamia should not be allowed to be closed till our return.”

This message electrified the Jamia alumni who called on Hakim Saheb with a request not to close the Jamia until the arrival of the young samaritan. Deeply impressed, Hakim Saheb also decided not to close down the institution. One of the aftermaths of the decision, however, was that it had to be shifted from Aligarh to Delhi where, perhaps, he could look after it well.

Later, in 1925, when Hakim Ajmal Khan and Dr. M.A. Ansari visited the European countries, Zakir Husain contacted them in Paris and reminded them of his own and his friends' pledge of placing their services at the disposal of the Jamia on their return. He also deputed Abid Husain, M. Mujeeb, Barkat Ali Qureshi and K.A. Hamied to meet Hakim Saheb and Dr. Ansari, reassuring them of their decision to serve the Jamia. He could not accompany them as he was busy preparing for his examination. Accordingly, the four dedicated young Indians went to Vienna where Hakim Saheb and Dr. Ansari were staying then. Both the leaders were immensely happy to find young men displaying in far-off lands a rare sense of concern for an almost collapsing institution.

For a little over three years Zakir Husain stayed in Germany where he acquired proficiency

in the German language and a deeper understanding of their history, literature and culture. He was elected president of *The Association of Indians in Central Europe* and he used this forum for mobilising public opinion in favour of India's struggle for freedom. He brought out a book in the German language entitled, *The Message of Mahatma Gandhi* which contained a collection of articles from the *Young India* with an introduction by himself. He also contributed many articles to the German newspapers. Once it so happened that he undertook a tour of Denmark and Sweden where he found that the money he carried with himself had been spent during the course of his journey. Undeterred, Zakir Husain overcame this financial difficulty by publishing an article on Mahatma Gandhi in a local newspaper along with his portrait. He was paid a handsome sum for the article and this enabled him to return to Germany.

He also brought out a beautiful pocket edition of the immortal *Diwan* of the Urdu poet Ghalib and a similar edition of *Diwan-i-Shaida*, a collection of poems by Hakim Ajmal Khan who composed verses under the pen-name *Shaida*. In accordance with the practice of Mahatma Gandhi, he propagated the cause of *Swadeshi* and continued to spin every day a certain quantity of yarn on a spinning wheel.

Zakir Husain came in close contact with several German scholars and eminent indologists who created an everlasting impact on him. He enjoyed the privilege of being a disciple of such eminent economists as Werner Sombart and Max Seyring who moulded his views on economics whereas the famous educationists George Kerschensteiner and Edward Spranger shaped his ideas about education. He also developed a lasting friendship with many men of letters and musicians of Germany.

He carried on research in *The Agrarian Policy of the British in India*, for which he collected copious material from the India Office Library and the British Museum, London. His thesis successfully analysed the causes of poverty in India and made a strident criticism of the colonial rule which was responsible for the poor conditions of the country. He surmised that India would experience a new capitalist development in the process of which a new exploiting class would emerge to replace the colonial rulers. He concluded thus:

“Looking a little bit deeper, one recognised the subconscious attempt of a privileged class to push aside another one, to replace white bureaucracy by a brown bureaucracy. It is not easy to say whether the masses will fare any better under their rule. A free India could not tolerate the existence of a class living on the work of others and at the cost of society without any contribution from their side.”

His thesis received universal acclaim and the Berlin University awarded him a doctorate on 15 January, 1926. Fulfilling his mission, thus, he prepared himself to leave the country where he had arrived three years ago and where he had found universal cordiality. Acknowledging this fact in a lecture on *India and Germany*, he showered praise on Germany for her technical achievements. He also expressed his gratitude to the Berlin University professors for their fond attachment towards India in general and the Indian students in particular. On this occasion he prophetically declared:

“I would not be surprised, if one or the other of the young Indians gathered here today would one day become a prominent son of the country.”

Little could he visualise that this young man was going to be none but himself.

True to his words, Dr. Zakir Husain returned home in February, 1926 along with his associates M. Mujeeb and Dr. Abid Husain, who had pledged to serve the Jamia after their arrival in India.

He was greatly shocked to find the Jamia in the doldrums. It was then a very small institution consisting of a few buildings. It had neither proper funds nor any public support. Somehow Hakim Ajmal Khan had managed to keep it alive even though its future appeared to be bleak. Zakir Saheb accepted the challenge and set in right earnest to resolve the crisis. From now onwards, the life story of Zakir Saheb merges with the life-history of the Jamia.

He took over as the *Sbaikh-ul-Jamia* (Vice-chancellor) with Dr. Abid Husain as its Registrar, and M. Mujeeb as Professor. Dr. Abid Husain was in charge of the publications and also the editor of the journals *Jamia* and *Payam-i-Taleem*. With the coming of this dedicated trio, the Jamia got a new lease of life in the sixth year of its existence. In fact, the pledge for their services by a band of western educated young men heralded an era of change. Their enthusiasm and selfless endeavours changed the entire vista in the Jamia, which recovered from the morass within a short span of time receiving appreciation from national leaders. During his visit to the Jamia in January, 1927, the Congress President Srinivas Ayyangar remarked that “other national educational institutions have become lifeless but I find the Jamia pulsating with life and I wish . . . that its foundation becomes more secure.” Similarly, during his visit to the Jamia in November 1927, Mahatma Gandhi recalled the memorable day in Aligarh when the students came out of the M.A.O. College and laid the foundation of the Jamia. Giving his impressions of the Jamia, Mahatmaji said:

“I am glad to find here some of the traces of those proud days, and I am very happy that you are trying your utmost to keep the flag flying. Your number is small but the world never overflowed with good and true men. I ask you not to worry yourselves about the smallness of the number but to remember that however, you may be, the freedom of the country depends upon you. . . . If you have not the things essential for the freedom of India, I do not know who else has them. Those things are fear of God and freedom from fear of any man or a combination of men called an empire. If training in these two essentials cannot be had in your institution, I do not know where else it can be had . . . I am sure that these two essentials are being very carefully taught here. . . .”

The Jamia, however, entered another critical phase when, in December, 1927, death claimed its Chancellor Hakim Ajmal Khan, who was a fund collector par excellence. His demise was a great loss to the people of the country in general and the Jamiaites in particular. However, his successor, *Amir-i-Jamia*, Dr. Mukhtar Ahmad Ansari was equally dedicated to the cause of the Jamia. He launched an *Ajmal Jamia* fund with a view to keeping the Hakim Saheb's memory evergreen and also to solve the chronic financial difficulties of the Jamia. But the target set for the fund could not be reached. With a view to reshaping the institution and overcoming the financial problems, Zakir Saheb ultimately formed a society, called the *Anjuman-i-Taleem-i-Milli* (National Education Society) with Dr. M.A. Ansari and Seth Jamnalal Bajaj as its president and the treasurer respectively. Zakir Saheb himself became the secretary of the society.

Henceforth, the society shouldered the responsibility of running the Jamia. Along with his colleagues, Zakir Saheb pledged to serve the Jamia for two decades at a meagre monthly salary of not exceeding one hundred and fifty rupees. Later, he voluntarily further reduced his salary and fixed it at eighty rupees per month. The low paid Jamia employees were supposed to get their salary first but in the case of Zakir Saheb he was the last to receive it. When it was decided further to pay to the employees half of their salary in cash and half to be credited to their account Zakir Saheb's salary in cash was reduced to forty rupees a month, a paltry sum which he continued to receive till 1944. There after, he continued to receive a monthly salary of eighty rupees till 1948 when he took over the vice-chancellorship of the Aligarh Muslim University. During this period he got things of daily use from a grocer, Subba Baniya, who had his shop in

Karol Bagh and was generous enough to supply to the Jamia teachers essential articles on credit. Even then a major part of Zakir Saheb's salary was spent over meeting the necessities of others. When, therefore, he left the Jamia in 1948, he had a balance of hardly a hundred rupees in his account.

Thus, the Jamia blossomed under the benevolent care of Zakir Saheb, who steered it adroitly for two decades despite the paucity of funds and other teething troubles.

The Jamia started a night school for adults on its premises which resulted in an increased enrolment. A branch school was also opened in the Bara Hindu Rao locality of Delhi. *Jamia*, the literary magazine and *Payam-i-Taleem* were regularly published, and maintained a standard. Similarly the *Jaubar*, *Al-Musawwar*, *Gulshan* and other wall papers were started. An Academy for the promotion of Urdu was established with Dr. Abid Husain as secretary. It organised extension lectures and the publication of standard Urdu books on a variety of subjects. The method of teaching was completely revolutionised. The adoption of the project method and other new techniques in the Jamia school attracted the attention of educationists abroad. It started new courses in journalism and commerce and gave practical training in trade by establishing shops which were managed purely by the children themselves. Similarly, the Children's Bank, and the *Khwancha* were started. To give children practice in the art of administration, Zakir Saheb introduced the children's government in the Jamia. With a view to attracting the attention of the people and involving the students in various activities, he initiated an educational festival (*Talimi mela*) which was held usually on the occasion of the Foundation Day of the Jamia. The celebration of the National week in the month of April also became a regular feature. To make the science students well-versed in their practical life, he encouraged them to prepare things of daily use and to sell them in the name of Jamia Chemical Industries. Similarly, he imparted to them lessons in craft such as gardening, carpentry, book binding, etc.

In order to develop literary taste among the students, Zakir Saheb organised the *Mushairas*, the *Bait bazi*, the debate and essay-writing competitions. He encouraged them to write articles and himself wrote stories for them and inspired others to write for children.

Similarly, he encouraged students to participate in sports, dramatics and scouting.

In 1935, he bought a piece of land in the Okhla village near the banks of river Jamuna¹, where the Jamia stands today. Zakir Saheb ignored the presence of important guests and significantly asked the youngest child of the institution present on this occasion to lay the foundation of its buildings. The following year he shifted the primary school from Karol Bagh to Okhla and gradually brought there the remaining parts of the institution. He was largely responsible for collecting funds for the new buildings in Okhla. Here he found more opportunities to serve the people at large. He asked the students to serve the villagers of Okhla, Jamia Nagar, by imparting education in health, cleanliness and sanitation. He also undertook the task of village upliftment as part of Mahatma Gandhi's constructive programme. He created a *Jamia Biradari* which promoted the feelings of fraternity between the people of the Jamia and the villagers in the neighbourhood.

The Teachers College for the training of teachers was then established by Zakir Saheb. Here he made novel experiments in educational methodology and received universal recognition. He also started an open-air school. He was equally concerned with the welfare of the teaching community of the Jamia and did all that was necessary in this direction.

Zakir Saheb enriched the library of the Jamia by appealing to eminent people to donate their personal books. In response to his call they generously shifted their huge collections of books

to the Jamia library which are still preserved in the Dr. Zakir Husain Library rightly named after him.

He instilled among the students a sense of responsibility, sincerity and belongingness. He would unexpectedly visit the hostel and join them for dinner, lunch or breakfast. He had a passion for cleanliness and insisted on its strict observance. He would pick up the rags and waste papers scattered here and there in the campus in order to keep the premises clean. Once he found the window panes dirty and instructed the person in-charge to get them clean. Finding them still dirty on his next visit, he took a rod and broke the window panes. On another occasion he asked a student to wear his cap after washing it. Finding him later in the same dirty cap, he picked it up, washed it himself and put it on the student's head. Similarly, he asked the boys to polish their shoes, and finding them wearing the same unpolished ones, he himself started polishing them. All these acts of his made the people feel ashamed and they never gave him a chance of reprimanding them.

The Jamia reached its zenith under Zakir Saheb's Vice-Chancellorship. Its reputation as an ideal institution was established to the extent that various educational institutions of the country requested him to frame their courses. Further, the government also recognised a few of its degrees on its own.

Zakir Saheb himself was acknowledged as a national figure and acclaimed as a man of vision and a great educationist. His ideas on education are found in his speeches that he delivered in the country, the convocation addresses that he gave in different universities and the writings that he contributed to various journals from time to time. Halide Edib, whom Zakir Saheb had met in Germany earlier, was all praise for him. Giving her impressions about Zakir Saheb she remarked :“. . . it is impossible to meet a more straightforward person . . . his activities are not coloured by any party prejudices. He gives all his time and energy to educational problems, constructively and, in a reasonable extent, experimentally. . . . He has an almost self-hypnotised look—the look of those with a single aim . . . ”

As an educationist, Zakir Saheb was fully aware of the limitations of traditional education. He, therefore, tried through the agency of the Jamia, a new pattern of education rooted in the cultural heritage of the nation.

In fact, he insisted on the reorganisation of the educational system in India. Expressing this thought in his welcome address to the All India Educational Conference at Delhi in 1934, Zakir Saheb said thus :

“. . . above all, two changes will have to be introduced in the entire system of education from bottom to top. The first of these is the change in the whole orientation of our education . . . It is essential to Indianise our whole educational system. It is essential to put an end to the recruitment of young men to the ranks of the so-called educated who are blind to the beauties of their own art, deaf to the harmonies of their own music, ashamed of their own language and literature, to whom all that is theirs is mean and ignoble, all that is foreign is, as such, noble and sublime. It is essential so to change education as to render it impossible that young men should be condemned to live as foreigners in their own land, unable to speak in their own tongue and incapable of thinking their own thoughts; with borrowed speech, as the poet has said, on their lips, with borrowed desires in their hearts. The second thing that will have to be done is to do everything to make the school an instrument of character formation . . . our educational institutions should give opportunities of practising what they preach . . . ”

This clearly indicates the nobleness that he attached to the meaning of education.

While encouraging the development of every distinct culture in the country, Zakir Saheb strove hard to promote a love for the nation as a whole. It was mainly due to his herculean efforts that the Jamia became an ideal institution, symbolising the composite and secular culture of India. "It was the function of the Jamia", he once said, "to train young men as citizens for carrying on the struggle for freedom and for giving meaning and content to freedom once it had been achieved."

Zakir Saheb's versatility as an educationist was universally recognised when Mahatma Gandhi invited him to the Conference that he had convened at Wardha to frame the basic education scheme in 1937. Responding to the call of the Mahatma, Zakir Saheb drafted the resolutions of the conference with great ability. The following four resolutions said that:

1. free and compulsory education should be imparted for seven years on a nation-wide scale;
2. the mother-tongue should be the medium of instruction;
3. the process of education should centre round the manual and productive work; and
4. the system of education was expected to cover the remuneration of the teachers.

Finding Zakir Saheb an asset to the country, Mahatma Gandhi appointed him as the Chairman of the Committee which was entrusted with the task of preparing a detailed syllabus on the lines of resolutions passed by the Conference. Zakir Saheb accomplished this uphill task with great ability and submitted his report under the Basic National Education Scheme. The Kothari Commission Report has it on record that the Basic Education 'was a revolt against the sterile book-centred examination-oriented system of education that had developed along traditional lines during several decades of British rule. It created a national ferment which . . . left its impact on educational thought and practice in a much wider sphere'. In fact, this new scheme was necessitated by the Congress which had formed governments in seven of the eleven British provinces through elections under the Government of India Act of 1935. The Congress governments obviously approved the Zakir Husain Committee Report. Zakir Saheb was elected president of the Hindustani Talimi Sangh which gave a regular annual grant to the Teachers Training College of the Jamia.

All these strenuous exercises affected Zakir Saheb's eye sight. It led him to go to Germany in 1939, for the treatment of glaucoma. However, when he reached there the Second World War had started and he was forced to leave that country without full treatment. As a consequence to the unilateral declaration of war by the British, the Congress governments resigned and Zakir Saheb's zest was thus lost. It was followed by the charges levelled against the Wardha Scheme by the All India Muslim League and the passage of the Lahore Resolution on March 23, 1940. This gave a great shock to Zakir Saheb. But he did not lose heart and kept on making experiments in educational methodology, though a sense of hurt remained in his heart. He wanted a peaceful environment for the active academicians. He was against politicising anything that was educational. He, therefore, called upon the national leaders of India to help in creating proper conditions for educational development. Addressing the Basic Education Conference in 1941 held under Dr. Rajendra Prasad he said:

“. . . I feel that today, more than ever before, political leadership has the chance, by appreciating the desires and difficulties of various communities and groups, and by promoting a frank and open exchange of power and privilege, to lay the foundations of a moral, progressive state. Till that has been done, the condition of us educationists will be pitiable. For how long shall we plough this desert? For how long shall we endure to see all our plans, our ideals, our dreams being suffocated in

the poisonous smoke of suspicion and distrust? For how long shall we tremble with the fear that a single political mistake, a little show of obstinacy can destroy for ever what we have achieved with the labour and the love of a life-time? Our work is no bed of roses, we are often despondent, often heart-broken. If we ever feel our strength failing us, upon whom shall we lean? Shall we lean upon this society in which brother is turned against brother, in which no values are acknowledged as final; this society which knows of no song that all may sing together, no festivals that all may celebrate, no joys that all may share, no sorrows that link heart to heart in sympathy? Our distress is beyond endurance. Bring us relief, relief today; for who can tell what tomorrow has in store."

Zakir Saheb was not a politician yet the politicians treated him with respect. They considered him an honest and sincere person, one who had dedicated himself to the task of nation-building. His eminence as an educationist rose still higher and he was even considered for the Interim Government in June 1946 when he was busy in making preparations for the Silver Jubilee of the Jamia scheduled to be celebrated in November, 1946 instead of October 1945. Yet such was Zakir Saheb's sense of self-abnegation that he refused to serve the government unless his name was jointly sponsored by the Indian National Congress and the All India Muslim League, a proposition which the latter could never have accepted.

However, Zakir Saheb successfully accomplished a great task by bringing the Congress and League leaders on a common platform on the occasion of the Silver Jubilee celebrations of the Jamia. The celebrations included an exhibition, a women's conference, speeches by the *Ulama*, old boys gatherings, symposia, seminar, convocation, dramatics, debates, sports, scout rallies, camp fire, etc. The atmosphere was vitiated by the communal riots that had become a usual feature. Delhi itself was in the grip of a communal holocaust and suffered from curfew. Some felt that the celebrations would be an utter failure. But Zakir Saheb worked against all odds. The main function was presided over by Nawab Hamidullah Khan of Bhopal. The stage was adorned by such political luminaries as Pandit Jawaharlal Nehru, Maulana Abul Kalam Azad, C. Rajagopalachari, Asaf Ali, Mohammad Ali Jinnah, Miss Fatima Jinnah, Liaquat Ali Khan and several others who, but for him, would never have assembled at one place. It was a most memorable scene. Zakir Saheb narrated the story of the Jamia in brief. Taking advantage of the presence of the distinguished leaders of both the Congress and the League, he apprised them of the prevailing communal atmosphere thus:

"You are all stars of the political firmament; there is love and respect for you not only in thousands but in millions of hearts. I wish to take advantage of your presence here to convey to you with the deepest sorrow the sentiments of those engaged in educational work. The fire of mutual hatred which is ablaze in this country makes our work of laying out and tending gardens appear as sheer madness. This fire is scorching the very earth in which nobility and humanity are bred; how can the flowers of virtuous and balanced personalities be made to grow on it? How can we provide adornment for the moral nature of man when the level of conduct is lower than that of beasts? How shall we save culture when barbarism holds sway everywhere, how shall we train men for its services? How shall we safeguard human values in a world of wild beasts? These words might appear harsh to you, but the harshest words would be too mild to describe the conditions that prevail around us. We are obliged by the demands of our own vocation to cultivate reverence for children; how shall I tell you of the anguish we suffer when we hear that in this upsurge of bestiality even innocent children are not spared? An Indian poet had said that every child that is born brings with it the message that God has not altogether despaired of mankind, but has human nature in our country so lost hope in itself that

it wants to crush these blossoms even before they have opened? For God's sake, put your heads together and extinguish this fire. This is not the time to investigate and determine who lighted this fire, how it was lighted. The fire is blazing; it has to be put out. It is not a question of the survival of this nation or that nation, it is a question of choosing between civilised human life and the savagery of wild beasts. For God's sake, do not allow the very foundations of civilised life in this country to be destroyed as they are being destroyed now."

His stirring speech moved the hearts of the people. It had an emotional appeal and created such an impact that even the leaders present were seen wiping out the tears from their eyes. Now it was left for them to act as Zakir Saheb had done his duty by awakening their conscience.

Pt. Nehru's Interim Government faced a crisis as the League members made its working difficult. The demand for Pakistan grew apace and was ultimately accepted by the new Viceroy, Lord Mountbatten. Freedom dawned upon India on August 15, 1947 but not without a scar on its psyche. Zakir Saheb was greatly upset. The ideal of a composite culture to which he was wedded had been shattered. The Jamia was also insecure as it could be attacked any moment. However, Pt. Nehru took care of this. The visit of Mahatma Gandhi further created the feelings of security in the Jamia. General Cariappa also visited the Jamia and stationed troops for its protection.

Zakir Saheb was ill, both physically and mentally. The jubilee celebrations had shattered his health. The communal hatred had sapped his mind. He was, therefore, persuaded by his friends to go to Kashmir for rest. At the Ludhiana railway station he was surrounded by the anti-social elements but, somehow or the other he escaped harm and returned to Delhi. This left him greatly sad. All his life he had fought against the communal virus and this episode was an agonising experience to share with others. On his return, he apprised the Prime Minister Pt. Nehru and the Home Minister Sardar Patel of the situation in the Punjab. They were simply shocked to hear the deteriorating conditions in the country. The Prime Minister himself paid a visit to Jullunder to see things himself.

All these months Zakir Saheb remained busy in protecting the lives of the refugees, feeding the hungry and sheltering the homeless. The Maktaba Jamia was set on fire resulting in the loss of a large number of books. However, half the books were saved in time. Despite such tragic experiences, he did not lose his sense of optimism. On an enquiry from the Prime Minister, he said that Jamia had made income of fifty percent. Explaining it further he said that since half of the books had been saved from burning, it amounted to a saving of fifty percent.

Zakir Saheb served humanity in words and deeds. In one of his talks from the All India Radio he said:

"You might say man is not just a part of Nature. He is not a stone, or a plant or an animal, remaining just as Nature made him. Man is man; he makes and destroys his world. This is true. That is why I call you 'Friends'. Nature has not made brothers out of you and me by bringing us into existence in the same country. We have for centuries lived together of our own free will, we have shared each other's joys and sorrows, we have been generous towards each other, ignored each other's faults, looked for the good in each other, learning and teaching, making up each other's shortcomings. We have rubbed shoulders with, tested, understood each other; loved, fulfilled the obligations of loyalty, been immersed in each other's hearts and soul; we have lived through the dark night of slavery in the flickering light of these relationships. Now that the sun of freedom has risen, why are our hearts becoming

estranged, why do our eyes refuse to recognise each other. Friends follow the rules of friendship, do not look upon friends as enemies, do not uproot centuries-old friendship in the frenzy of the moment. Think of what you can do to those who are afflicted with madness; they, too, are your brothers and they, too, will become your friends. Do not demand guarantees of friendship and loyalty from them as from enemies, strengthen through your friendship the foundations of loyalty. Friendship is a plant that does not take root in the soil of suspicion, distrust and hatred. Be affectionate and trustful, have faith in human nature then see how this plant of friendship thrives, how its flowers fill with their fragrance the atmosphere of vengefulness and rancour, how the bright beauty of their colours dissolves the surrounding turbidity. Brothers ! Cultivate friendship, follow its principles, fulfil its demands and ask others to fulfil them.”

He did not lose any opportunity to appeal to the good sense of the people. When in January 1948, Mahatma Gandhi undertook the fast for communal harmony, Zakir Saheb addressed him thus:

“We have no doubt that you are guided by a superior wisdom, and that you have chosen the right moment to urge your people to purify their hearts. God has given you a strength and a confidence which does not fail, and a faith that adverse circumstances cannot shake. God is with you and you must succeed. Only we are overwhelmed with shame that free India should have nothing to offer you but bitterness and distress. . . May God spare you to lead us onwards towards the higher freedom for which you have been striving and of which, inspite of all our blindness and misdeeds, you still believe us worthy. If anything can transform us, it is your faith that the highest in us must, and will, assert itself.”

Mahatma Gandhi’s fast was meant to arouse the conscience of the nation and normalcy seemed to be returning. But, ultimately, the apostle of non-violence became a victim of violence and was martyred on January 30, 1948 at Birla House, New Delhi. This shocked Zakir Saheb beyond measures. But who can fight the will of God?

All these traumatic experiences made Zakir Saheb sick and tired. Two decades earlier he had pledged to serve the Jamia for twenty years. The pledge had been kept and the time of its expiry arrived. Fed up with the bureaucracy which hampered the Jamia’s development and expansion, and, unwilling to attend upon the bureaucrats every now and then, he decided to relinquish his position and, retire. He, therefore, requested the Court of the Jamia in October, 1948 not to re-elect him to the post of Vice-Chancellor.

However, at a time when the Jamia was creating a positive image, the Aligarh Muslim University was losing its lustre. The national stalwarts like Jawaharlal Nehru and Maulana Abul Kalam Azad persuaded Zakir Saheb to reorganise and reorient his *alma mater*. He treated this as an opportunity to serve another great cause but agreed to become the Vice-Chancellor of the Aligarh Muslim University on the explicit condition that he would not serve as a government nominee but only as the unanimous choice of the University Court. Consequently, in November, 1948, the Aligarh Muslim University Court elected him as its Vice-Chancellor and again re-elected him for six years in 1951 under the revised Aligarh Muslim University Act of 1951.

On taking over as Vice-Chancellor, Zakir Saheb found himself faced with numerous problems. The University was fast declining and had no hope of regaining its former glory. The students had become frustrated as they considered their future to be bleak. Their numbers had fallen considerably and most of the good teachers had left it.

As usual, Zakir Saheb devoted himself to root out the prevailing chaos and confusion. His success was great and the university once again regained its past glory. He allayed fears and suspicion among the teaching staff and infused in them a feeling of confidence. There was an increase in the number of students and teachers. He involved them in various activities of the university, thus, preparing them to fight all the divisive forces. He brought eminent teachers and distinguished scholars to the various faculties of the university and always stood by them. He expanded the Science faculty and converted it into a centre of research and higher learning. He gave much attention to the Engineering College and shaped it into a prestigious institution. He enriched the university library by adding to its collection thousands of books and developed it into an independent discipline. He got new buildings constructed and laid out beautiful gardens in the campus. He reorganised the Old Boys Association and revived the All India Muslim Educational Conference. He re-established the *Anjuman Taraqqi-i-Urdu* whose publication *Hamari Zuban* started from January 1, 1950. Similarly, he resuscitated the *Aligarh Institute Gazette* under the title *The Muslim University Gazette*.

He never lost confidence in the goodness of mankind and was clear about the role that the Aligarh University was destined to play in national life. He always stressed that education aimed to uplift humanity by cultivating noble qualities. Once he said:

“... The main task is cultivation of the mind and the spirit, which takes a whole life-time. It begins as soon as we begin to become conscious of the world around us. The function of the educational institutions is to see that we treat firmly along the path to our goal.”

Under Zakir Saheb's stewardship the Aligarh Muslim University blossomed into a centre of intellectual pursuits and scientific research. The man behind all this was the one who had not only created a new Jamia but also helped “to preserve the Aligarh of old.”

In 1956, Zakir Saheb resigned from the Vice-Chancellorship much before the expiry of his term only to lead a retired life. Yet still higher positions waited for him in the immediate future.

While he was the Vice-Chancellor, Zakir Saheb also served as a member of the Education Commission, the Press Commission and the Indian Universities Commission. He was first elected Chairman to the National Committee of the World University Service and later he was elected Chairman to its International Committee by the General Assembly at Helsinki in 1956. He served as the Chairman of the Central Board of Secondary Education also. He was a member of the Educational Reorganising Committee of Bihar, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh. He was also a member of the Executive Board of UNESCO in Paris. In all these capacities he worked successfully and contributed in full measure. In fact, he proved to be an asset to every committee and commission with which he remained associated.

In April 1952, Zakir Saheb was nominated a member of the Rajya Sabha when he was on a tour of the United States of America. This was the national recognition of his contribution in the field of education. He was renominated to this House again in April, 1956 for a period of six years. He did not seem to be much interested in parliamentary exercises, perhaps, because of his pre-occupations at the Aligarh Muslim University and his involvement in constructive activities in several fields. In 1956 the Prime Minister Pandit Nehru, moved in the House a resolution for approval of the principles, objectives and programmes of development contained in the Second Five Year Plan, which was prepared by the Planning Commission. Zakir Saheb was both an educationist and an economist. He made a significant speech which highlighted the flaws and freely criticised the document. He praised the First Five Year Plan for its success, still the question was whether that success prevented them from achieving something more.

Zakir Saheb's contribution to the Jamia, his services to the Aligarh Muslim University and his work on various bodies had already attracted the attention of national leaders. They, therefore, decided to utilise his services for much bigger cause and he was appointed the Governor of Bihar in 1957, even when he was in Europe for treatment. Zakir Saheb took charge of the Governorship in June, 1957 when the ruling party and the state were faced with an acute crisis and multifarious problems

As Governor, Zakir Saheb did not confine himself within the four walls of the Raj Bhavan and instead, converted it into a rendezvous for various types of persons—poets, writers, artists and educationists. He accepted most of the invitations and welcomed almost all types of individuals.

As Governor, Zakir Saheb had cordial relations with the Chief Minister and his colleagues. Yet this did not deter him from pressing the Bihar Cabinet to make a change in the Bihar Universities (Amendment) Bill, the draft of which aimed at converting the state universities to mere minor government departments. He even threatened to resign if the changes were not effected as he, being an educationist, could not think of lowering the status of the universities.

Thus, he successfully served the people of Bihar as their Governor until he was summoned to New Delhi to shoulder greater national responsibilities at the highest level. In 1962, Zakir Saheb was chosen to become the Vice-President of the Indian Republic and the Chairman of the Rajya Sabha. He was unanimously applauded and given a warm welcome on the first day when he entered the Rajya Sabha on 15th June 1962. The members greeted him and made speeches, praising him. Replying to these expressions of love, affection and respect, he said:

“I wonder if I should not tell you that when I first came to know of it, I was greatly surprised that I was being considered for this high office at all and I could not easily convince myself of the reasons why. But the thousands of letters and telegrams of congratulations which I received after my election seemed to give me a clue, for, a disproportionately large percentage of these letters came from teachers, teachers of primary schools in remote corners of the country, teachers of high schools and teachers in the universities. They all seemed to tell me that I was considered worthy of this honour on account of my close involvement in educational work, and the significance that our people rightly appear to attach to education in their life.”

He called upon members of all parties to co-operate with him in order to maintain decorum and dignity of the House.

Zakir Saheb served the Rajya Sabha with dignity. He maintained order in the House and added grandeur to it. He respected the feelings of the opposition members and gave them full opportunity to express their views in the House. He never put a restraint on them. Sometimes he relieved the House of grave tension by cracking a joke most appropriate to the occasion which made the members smile or laugh. Although he was not politically inclined, he adjusted to the changing circumstances. The Chairman has the power to rule out resolutions and to take the recalcitrant members to task but Zakir Saheb never did anything of the sort. He met everybody with his usual affection and remained neutral while presiding over the deliberations of the House. He was a thorough democrat and so gave every member the right to criticise the government. In his view all the members were equal, irrespective of the party to which they belonged. Dr. Tarachand, who was a member of the Rajya Sabha when Zakir Saheb was its Chairman, commented that he faced the day-to-day ordeal with immense fortitude and, even though his equanimity was sometimes ruffled, he maintained the dignity and did not allow the business of the House to be unduly disturbed.

When, therefore, he relinquished the office in 1967, he received rich tributes from all sections of the Rajya Sabha. They all highly appreciated his fairness and competence. Speaking on the occasion, the Prime Minister, Mrs. Indira Gandhi said that she was impressed by the dignity, impartiality, patience and wisdom with which Zakir Saheb had conducted the proceedings of the House for five years. Similarly, the opposition members eulogised his role in the House and unanimously acknowledged that he had always cooperated with them and maintained a balance between the contending claims.

During the tenure of his Vice-Presidency, Zakir Saheb had to suffer the shock of the passing away of two of his great friends—Pandit Jawaharlal Nehru and Lal Bahadur Shastri, both Prime Ministers of India.

In fact, Nehru's death was a personal loss to him. During the turbulent days of partition, Panditji was most concerned about the Jamia and its safety. Again, it was during Panditji's times that Zakir Saheb was chosen as the Governor of Bihar and the Vice-President of India.

In his capacity as Vice-President of the Indian Republic, Zakir Saheb made goodwill visits to many countries. He went to Algeria, Tunisia, Morocco, Kuwait, Saudi Arabia, Jordan, Turkey, Greece, Afghanistan, Thailand, Cambodia, Singapore, Malaysia, the United States of America and other countries, promoting there the feelings of goodwill and mutual understanding. When, therefore, the question of election to the highest office of presidency came up in 1967, he was considered to be the fittest successor to Dr. S. Radhakrishnan.

Consequently, on April 10, 1967 Zakir Saheb was chosen as its candidate for the Presidentship by the Congress Parliamentary Board. On previous occasions, the election of the President of India had been a mere formality as the Congress commanded an absolute majority in the Parliament and State Legislatures. But this time it was going to be a tough affair as some of the states had non-Congress governments and all the Opposition parties had jointly proposed the Chief Justice of India, K. Subba Rao who had already resigned from the Supreme Court to participate in the Presidential election scheduled to be held on May 6, 1967.

However, despite all the individual and collective efforts of the Opposition, Zakir Saheb won with a convincing majority, securing 4,71,244 first preference votes as against 3,63,971 polled by his principal rival, K. Subba Rao.

Surprisingly enough, when the election campaign was at the peak, Zakir Saheb was delivering the Convocation Address at the Michigan University in the United States. When asked as to how he happened to be in the United States when he was running in the election, smiling came the reply from Zakir Saheb that "We in India only stand and do not run." He returned back only three days before the election.

Zakir Saheb's victory in the presidential election was hailed with universal joy. In the words of Prime Minister, Mrs. Indira Gandhi "a life-time of dedicated service has earned the President elect the affection, respect, service and goodwill of the entire nation." Even the foreign media considered it a victory for Indian secularism.

Zakir Saheb was sworn in as the third President of Indian Republic on May 13, 1967. Speaking on this occasion he said:

"I can only assure you that I enter this office in a spirit of prayerful humility and total dedication. I have just taken the oath of loyalty to the Constitution of India. It is the Constitution of a comparatively new state which its free citizens have for the first time

in their history given to themselves. It is the young state of an ancient people who, through the long millennia and through the cooperation of diverse ethnic elements have striven to realise timeless, absolute values in their peculiar way. I pledge myself to the services of those values. For though some concrete realisations of a value may become inadequate with the change of circumstances, the value remains eternally valid and presses for newer and fresher realisation. The past is not dead and static, it is alive and dynamic and is involved in determining the quality of our present and the prospects of our future.

“The process of its constant renewal is, indeed, the process of the growth of national culture and national character. It is the business of education, as I see it, to minister to this constant renewal; and I may be forgiven the presumption that my choice to this high office has mainly, if not entirely, been made on account of my long association with the education of my people. I maintain that education is a prime instrument of national purpose and that the quality of its education is inescapably involved in the quality of the nation. I, therefore, pledge myself to the totality of our past culture from wheresoever it may have come and by whomsoever it may have been contributed. I pledge myself to the service of the totality of my country’s culture. I pledge my loyalty to my country, irrespective of region or language; I pledge myself to work for its strength and progress and for the welfare of its people without distinction of caste, colour or creed. The whole of Bharat is my home and its people are my family. The people have chosen to make me the head of this family for a certain time. It shall be my earnest endeavour to seek to make this home strong and beautiful, a worthy home for a great people engaged in the fascinating task of building up a just and prosperous and graceful life. The family is big and is constantly growing at a rather inconveniently fast pace. We shall each one of us have to participate unsparingly in building its new life, each in his own sphere and each in his own way. For sheer size the tasks ahead of us are so demanding that no one can afford to sit back and just watch or let frustration become endemic in our country. The situation demands of us work, work and more work, silent and sincere work. . . .

“. . . the state to us will not be just an organisation of power but a moral institution. It is a part of our national temperament and an inheritance from the great leader of our liberation movement, Mahatma Gandhi, that power should be used only for moral purposes. The peace of the strong is what we shall dedicate ourselves to work for. Our concept of national destiny will never have the expansionist urges of imperialistic growth, it shall ever eschew chauvinism. It shall work for providing to each citizen the essential minimal of decent human existence. It shall fight against intellectual laziness and indifference to the demands of social justice. It shall eradicate all narrow, corporate selfishness. And it shall do all this as the willing acceptance of a moral duty, as a joyfully undertaken ethical task.

“We shall seek to combine in our national life power with morality, technique with ethics action with meditation, the East with the West, Sieg.Fried with the Buddha. We shall keep in view the two poles of the eternal and temporal, of an awakened conscience and skilled efficiency, of conviction and achievement.

“I have full faith in my people that they will bring forth the energy requisite for the satisfactory performance of this dual task.

“It shall be my privilege to contribute my share to this enchanting enterprise.”

It surprised many a nation that India elected a member of the minority community as head of the state within two decades of her independence. Even when he was being nominated by the Congress, a German correspondent remarked that quite a few people in Europe had thought that relations between the Hindus and the Muslims were governed by enmity and hatred. To this he retorted thus:

“This impression is totally erroneous. India is a secular state where every one can aspire to occupy the highest office in the land, irrespective of caste, community or religion. In fact, representatives of minorities are occupying important positions in all walks of life in India....”

In fact the secular image of India reached its highest water mark after Zakir Saheb's election as the first citizen of the country.

President Husain addressed the first Joint session of the Parliament on February 12, 1968. In his address he surveyed the achievements and failures of the past and outlined the targets in future. However, he called upon the members to achieve an amicable solution of the multifarious problems after a dispassionate consideration. In his view, reasoned debates and sustained persuasion were the only ways of democratic functioning.

He abhorred violent agitations that led to the weakening of the democratic fabric and undermined the foundations of national unity. He wanted the Centre and states to function smoothly in a spirit of cooperation. He made it clear that the steadfast pursuit of peace, international understanding and cooperation continued to be the basic objectives of India's foreign policy which co-existed with the enlightened national interest. It was his firm conviction that the principles of co-existence alone provided the framework for international peace. Concluding his address, the President said:

“ After many centuries, the people of India are going through a process of dynamic change. It is a challenge to us all to answer the urges and needs of our people. Important national problems must be placed above the party politics. Government will be ready to sit with leaders of all parties and take counsel with them on major issues of interest and importance to the nation.”

Zakir Saheb was very anxious to safeguard the hard-won independence of the country. For this he was in favour of strong defence. He believed that the Himalayas once considered to be natural barriers against possible attacks from across the northern regions had ceased to be impregnable after 1962 and it was now the duty of the Indians themselves to guard the Himalayas in order to safeguard their freedom. He was greatly interested in the well-being and efficiency of the Indian armed forces and paid special attention to the development of the National Defence Academies which, in his view, served as the nurseries for the officers of the three services.

In his capacity as President, Dr. Zakir Husain promoted understanding and friendship among the people of India and other nations. He visited the Soviet Union in July 1968 and was impressed by the achievements made by her in all fields of human endeavour where “more than 100 nationalities with different languages, cultures and traditions” had been “welded into a strong and united nation.”

During his presidency, many dignitaries from different countries visited India. President Kenneth Kaunda of Zambia, Governor-General W. Gopallawa of Sri Lanka, President Tito of Yugoslavia, the King of Bhutan, Emperor Haile Selassie of Ethiopia, King Reza Shah of Iran were

some of the distinguished guests who were received by him. With all of them he had discussions which resulted in strengthening India's ties of friendship with their countries.

Essentially a teacher Zakir Saheb was at his best in the midst of teachers, students and books. An author of repute, Zakir Saheb's *Capitalism : An Essay in Understanding* reveals his personality as an economist whereas his *Educational Reconstruction of India* brings him out as an educationist who stressed the need for a thorough reappraisal of the educational system and its orientation to meet the requirements of national objectives. Besides these, his speeches, convocation addresses and other writings have also been brought out in various languages. His convocation addresses have been published under the title, *The Dynamic University*.

Zakir Saheb enriched the Urdu language by translating into it Plato's *Republic*, Fredrich List's *National System of Economy* and Edwin Cannan's *Elementary Principles of Economics* which have been acknowledged as the best. Commenting on Zakir Saheb's translation of the *Republic*, one of his friends rightly stated that had Plato been well versed in Urdu, he too would have used exactly the same language.

Zakir Saheb wrote many stories for children in the name of his daughter Ruqaiya Raihana such as *Abbu Khan Ki Bakri*, *Aqab*, *Andha Ghora*, *Usi se Thanda usi se Garm*, *Kachhwa Aur Khargosh*, etc., which were also translated into English. In fact, he enjoyed writing for the young. Revealing his own experience he once stated:

“When years ago I wrote some stories for children I liked them. I remember I cried when I read one of them after finishing it.”

He not only wrote for children himself but inspired others also to write for them.

Zakir Saheb considered books to be his best friends and companions. Once he said:

“The book, indeed, is the life companion of the modern man. And it is, indeed, a marvellous companion. It never speaks unless it is spoken to and attentively listened to. It can wait eternally for your approach. It is ever ready at all hours of the day and night to oblige and to offer the best it has to whosoever seeks it. It instructs, advises, inspires, rebukes, but stops immediately you have had enough of these. It never gets irritated at the silly questions one sometimes tends to put to it. It just smiles and holds its breath. Yes, the book is a wonderful companion. It is wonderful companion for those who are lonely, it is a wonderful teacher for those who wish to learn and it is a wonderful source of enjoyment.”

Zakir Saheb promoted many cultural activities in the country. He encouraged artists in every field and considered them as the custodians of the cultural heritage. He always took keen interest in the sangeet sammelans, music concerts, literary conferences, art exhibitions, book fairs and dramatic performances.

During the presidency of Zakir Saheb, the death Centenary of the immortal poet Ghalib was celebrated throughout the country. Ghalib was his favourite poet whose verses often inspired him and which he frequently quoted. What impressed him most was that Ghalib was never prepared to tread the beaten path.

He was awarded *Padma Vibhushan* in 1954 and *Bharat Ratna* in 1963. He was awarded D.Litt. (Honoris Causa) by the Universities of Aligarh, Allahabad, Cairo, Calcutta and Delhi.

Gardening was Zakir Saheb's favourite pastime. Wherever he lived and in whatever capacity he served, he transformed the place into a garden. He was fond of roses. He always put a rose in the buttonhole of his *sberwani*. He collected a variety of roses from different parts of the world. The Aligarh Muslim University, The Raj Bhavan of Patna, the Vice-President's House in New Delhi and the Rashtrapati Bhavan still remind the people of his great love for roses. He improved the Mughal Gardens in the Rashtrapati Bhavan and developed many varieties of roses which continue to blossom and spread their fragrance even today.

Zakir Saheb had a fascination for stones too. He had a rare collection of fossils, rocks and crystals, which he collected from different corners of the world. When somebody jokingly enquired as to why he loved stones, prompt came the reply that "they do not speak and remain silent." On another occasion he remarked:

"There cannot be a more precious thing than these stones. They neither deceive anybody nor complain against anyone. They have neither enmity with anyone nor they encroach upon anybody's rights. They neither conceal their real self nor reveal anyone's secrets."

Zakir Saheb also collected models of calligraphy from different parts of the world. He personally met the calligraphists of West Asian countries and collected their models. In fact he encouraged this art in Jamia Millia also. He showed avid interest in good paintings and always praised the worthy ones. Wherever he went, he visited the famous galleries of painters and purchased the paintings that he liked most. On seeing the eminent painter M.F. Husain at an exhibition, he came forward and introduced himself to him, saying "This humble self is also called Husain."

He was affectionate to all and respected elders. He never differentiated between the rich or the poor, high or the low. Whenever he came to the Jamia Millia mosque for the Eid prayers from the Vice-President's House, he would visit all and never forgot to seek the blessings of his old maid servant who used to live in the servants quarters of his Kothi in Jamia Nagar. Once when he was surrounded by the people at the Jamia on the Eid day, he found the old driver of the Maktaba Jamia standing aloof and aside in a corner. Zakir Saheb had a glimpse of him and rushed to embrace him with a query: "don't you like to be greeted by me?"

On becoming the President, Zakir Saheb received a letter of greetings from one Subba Baniya who used to supply him and other teachers with articles of daily use when the Jamia was in Karol Bagh. Zakir Saheb immediately asked his driver to go to Karol Bagh and fetch him to the Rashtrapati Bhavan. Subba was excited as he was being invited by the President himself. He was with the President for some time, took tea, got himself photographed with him and then took leave of him. Zakir Saheb went to see him off. When his A.D.C. cautioned him that protocol demanded that he could not cross a particular point Zakir Saheb remarked: "Your protocol is limited only for a period of five years. I have a life-long protocol with him. Had this Subba not supplied me the articles of daily use, your President would not have been alive to remain in the Rashtrapati Bhavan."

The happiness of others was always uppermost in his mind. Once he was distributing prizes to the students at the school. During the course of speech, he received a note which he read and kept it in his pocket. When the function was over he rushed to his residence where his ailing daughter had breathed her last. When he was asked as to why he did not leave the function immediately after receiving the note, Zakir Saheb replied: "How could I deprive the children of their happiness and joy that was writ large on every face."

Zakir Saheb's way of teaching was pragmatic. His actions made the people realise their

mistakes. It was a fashion among the students of Aligarh University to keep their *achkans* unbuttoned. Zakir Saheb disliked this. He wanted them to be properly dressed. Once when some students called on him with their *achkans* unbuttoned he himself buttoned them while talking to them. The students never kept their *ackhans* unbuttoned thereafter.

Zakir Saheb had a refined aesthetic sense. He was immaculate in his manners and very sophisticated in doing things. Once when it was decided to vacate the Jamia during the communal disturbances, Zakir Saheb asked his friends to leave every thing in their houses at the appropriate places so that the new occupants could feel that the previous occupants of the house loved it.

Zakir Saheb was very generous. He helped all those who approached him and assisted even those who did not ask for it but needed it. He recommended many persons to go abroad for higher studies and arranged finances for their stay there. He got the ancestral house of his wife in Qaimganj transferred to the servants of her family who still reside in it.

An embodiment of what is noble, good and abiding in our tradition of universal brotherhood and democracy, Zakir Saheb worked ceaselessly for national integration. He was a born teacher and stood for the ideal of secularism. Dedicating his life to the betterment of the common good of the country, Zakir Saheb worked for them without caring for any inconvenience to himself.

A few days before his demise, a Union Minister, hearing that the President was going on a tour of Assam, Nagaland and NEFA, expressed his concern at the risk being undertaken by him. Zakir Saheb smilingly said: "My people are expecting me there."

During his visit to Assam he delivered one of his last speeches on 25th April, 1969 at Gauhati while inaugurating the Mahatma Gandhi Visiting Professorship at the Gauhati University. Speaking on the Gandhian way for the reform of the Indian educational system, he pronounced three main conditions: "dignity of manual labour, national or social service, and the adoption of regional languages as media of education at the university stage."

These ideals had been given shape by Zakir Saheb himself all through his life. The inauguration at the Gauhati University was one of the last acts of abiding value that he performed in life.

On his return from the tour, while a panel of physicians waited on him for medical check-up, Zakir Saheb suddenly collapsed and breathed his last on May 3, 1969. He was laid to rest in the institution which he served for more than two decades, on a mound on the one side of which stands the Central Library and on the other, the Senior Secondary School.

The tributes paid by the Prime Minister Smt. Indira Gandhi summarise some of the traits of Zakir Saheb's personality. She said:

"Coming in his person the richness of the composite culture of India, he raised the standard of our public life by his words and actions. The ventures he cherished, the constructive work he did as educationist and social worker, the distinction he brought to every position he held in the national, international fields will guide generations to come."

In the words of President V.V. Giri:

"... in the midst of ceaseless endeavour, he remained a *karmayogi*, maintaining his serenity and poise all along. At the same time, he was no ivory tower philosopher

but was one who was full of warmth, understanding and fellow-feeling. He was, indeed, a real *Ajatashatru*.”

To his closest friend Professor M. Mujeeb, Zakir Saheb’s “loyalty to his state and his people was unconditional. His secularism was not an enlightened intellectual response to the exigencies of the modern age. It was a love of truth, justice and humanity beyond all considerations of advantage—an absolute value to be served at all costs.” To K.G. Saiyidain, “... he was not surprised by anyone as an artist in the art of living. His personality had unique integrity and wholeness which expressed itself in everything that he did, great or small.”

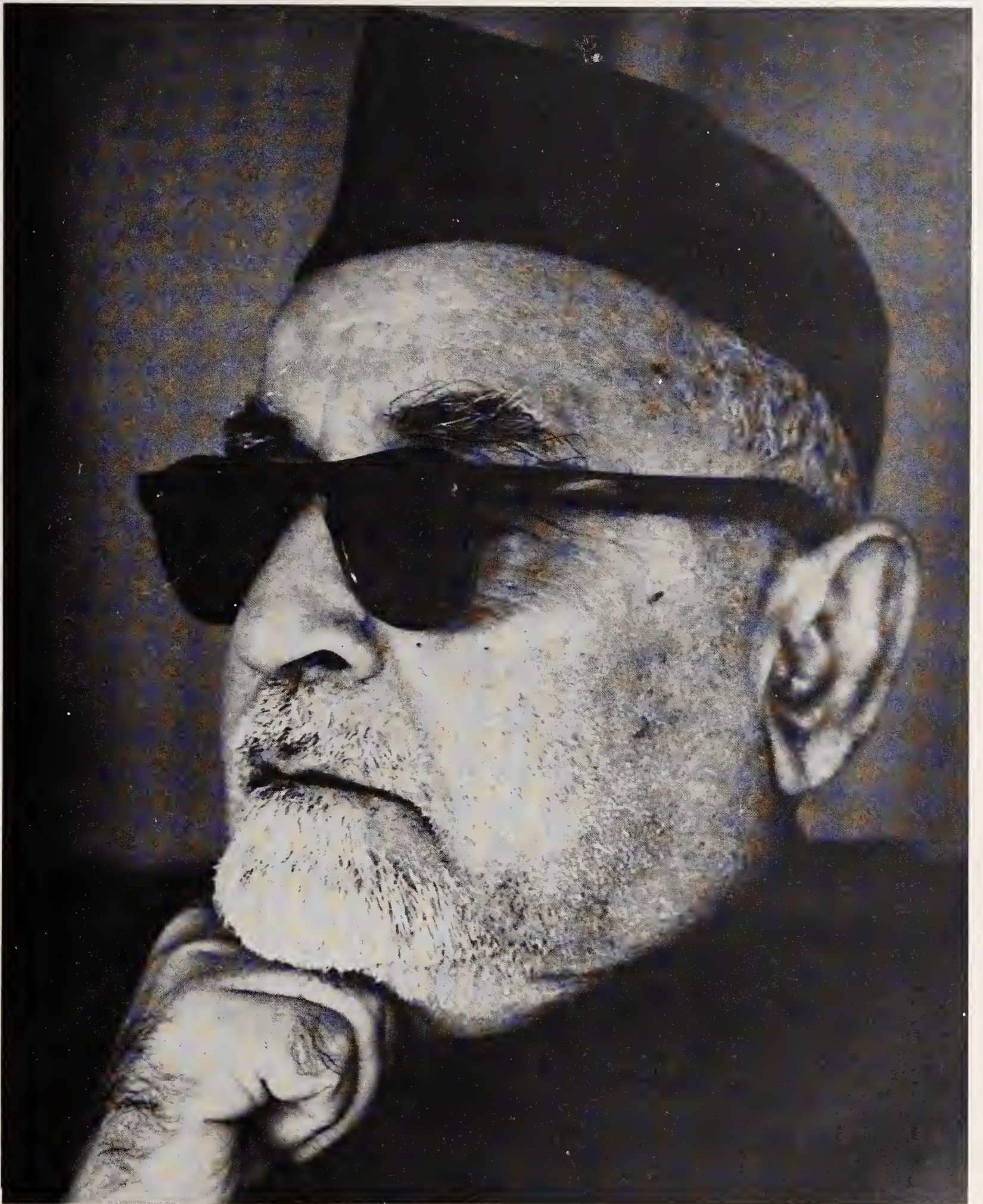
Such was our beloved Zakir Saheb, a towering personality among men of his times. Tall in height, handsome in looks, fair in complexion with a small trimmed beard on a round face, the bespectacled, immaculately *Kbaddar*-clad Zakir Saheb epitomised the age-old philosophy of simple living and high thinking. Strong-willed, selfless, scholarly and secular, he was a dedicated soul. His life is worthy of emulation by all seeking the quintessence of secularism which still continues to elude us.

डॉ. ज़ाकिर हुसैन - छाया चित्रों के माध्यम से

Dr. Zakir Husain- Through the Lens



एक यादगार क्षण
A rare moment



ध्यानमग्न

In a thoughtful mood



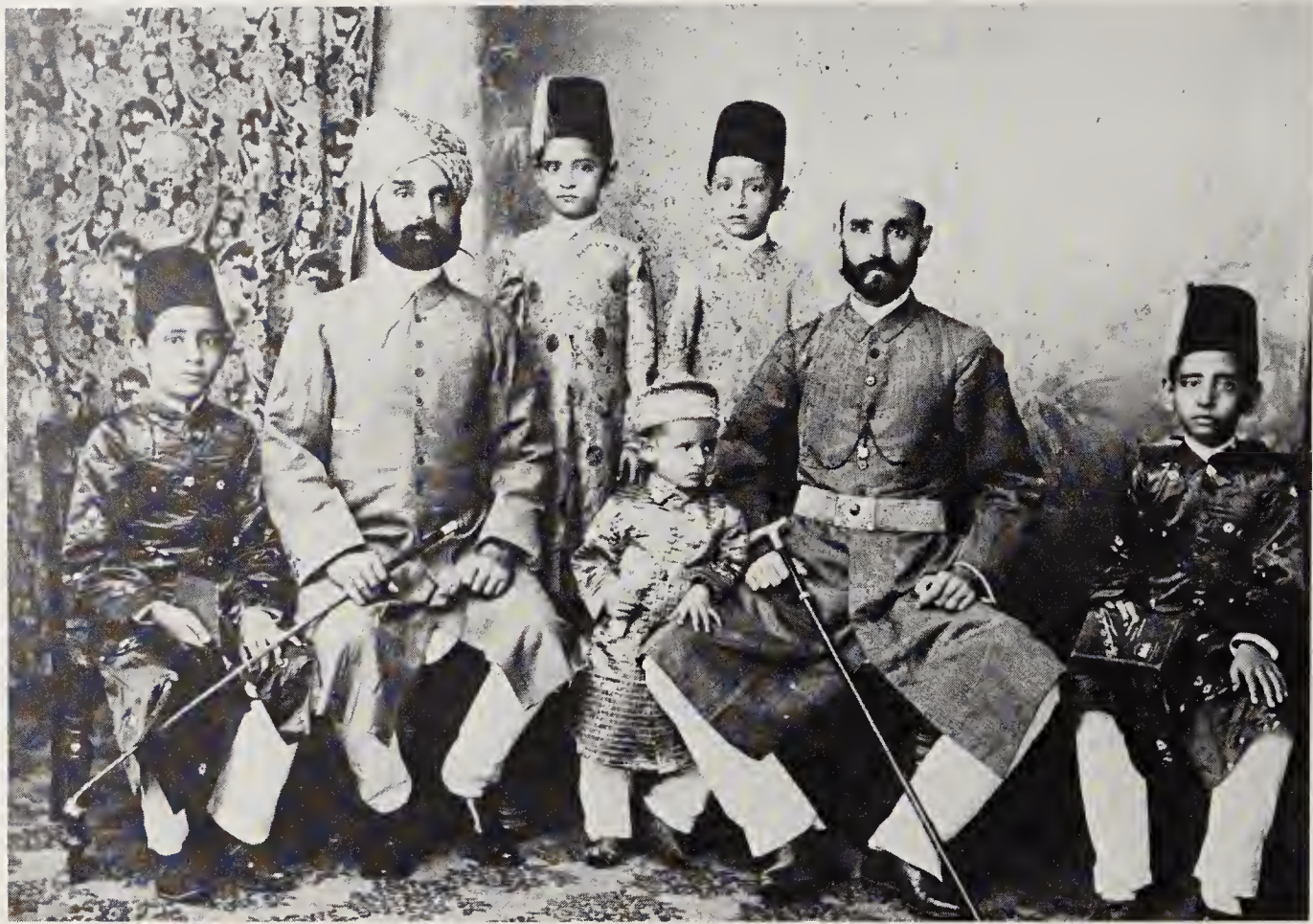
सुविख्यात पुत्र के सुविख्यात पिता फिदा-हुसैन खान

An illustrious father of an illustrious son-Fida Husain Khan



जर्मनी में शोध विद्यार्थी

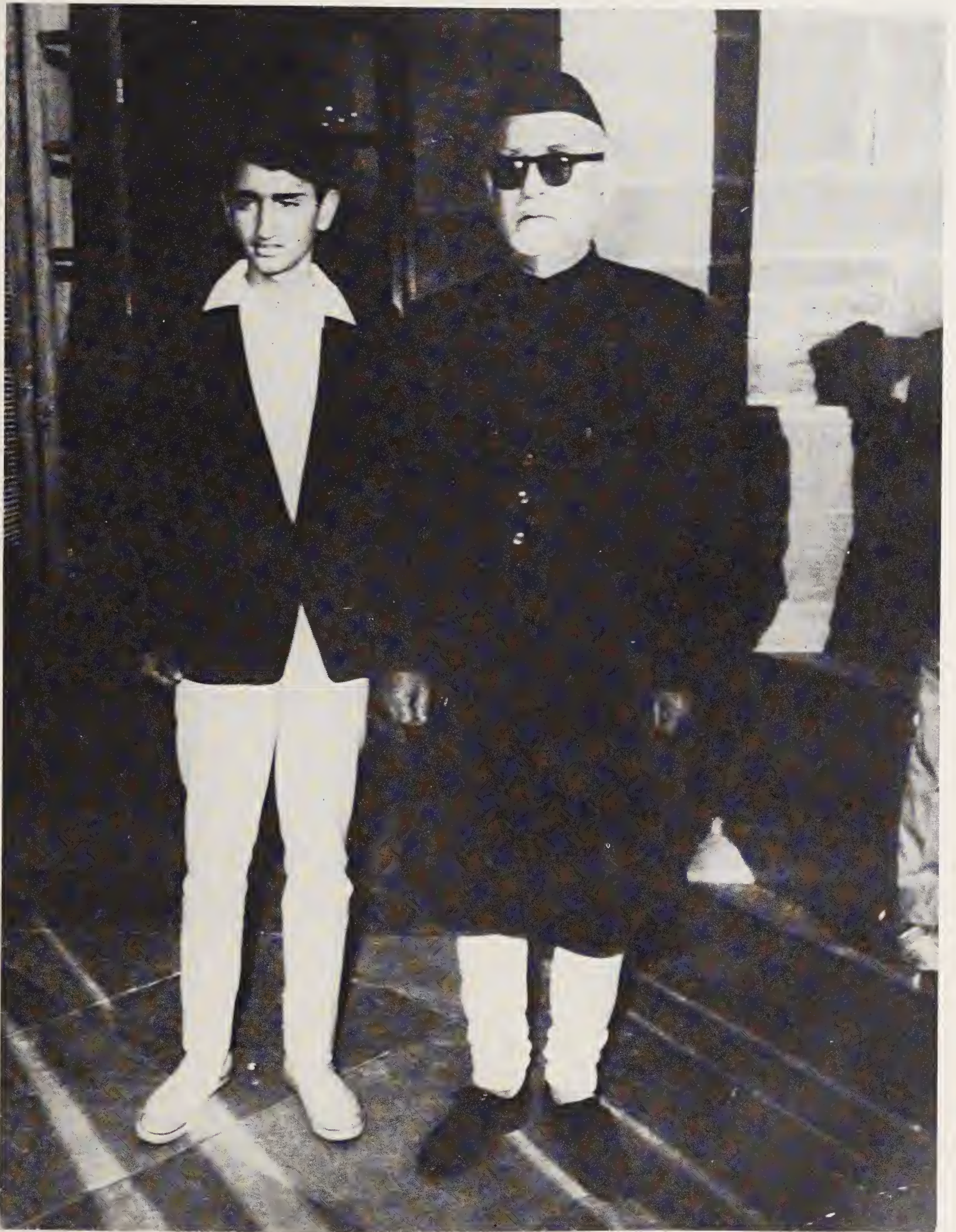
A researcher in Germany



पारिवारिक मिलन
A family rendezvous



अपने अनुज डॉ. यूसुफ हुसैन खां, पुत्रियों, उनके बच्चों और दामाद, खुरशीद आलम खान के साथ
With younger brother Dr. Yusuf Husain Khan, daughters, grandchildren and son-in-law Khurshid Alam Khan



अपने नाती सल्मान खुरशीद के साथ
With daughter's son Salman Khurshid



पत्नी शाहजहाँ बेगम, पुत्री सईदा खुशीद और नातिन हुमा के साथ
With wife Shahjahan Begum, daughter Saeeda and grand-daughter Huma



एक सुविख्यात परिवार
A distinguished family



नातिन को कुरान के अध्ययन हेतु प्रेरित करते हुए
Initiating the grand-daughter into the Holy Quran



अपनी पुत्री और नाती के साथ
With daughter and grandson



खिलाफत आन्दोलन में एक मित्र के साथ
With a friend in Khilafat movement



अनुज डॉ. यूसुफ हुसैन खां के साथ

With younger brother Dr. Yusuf Husain Khan



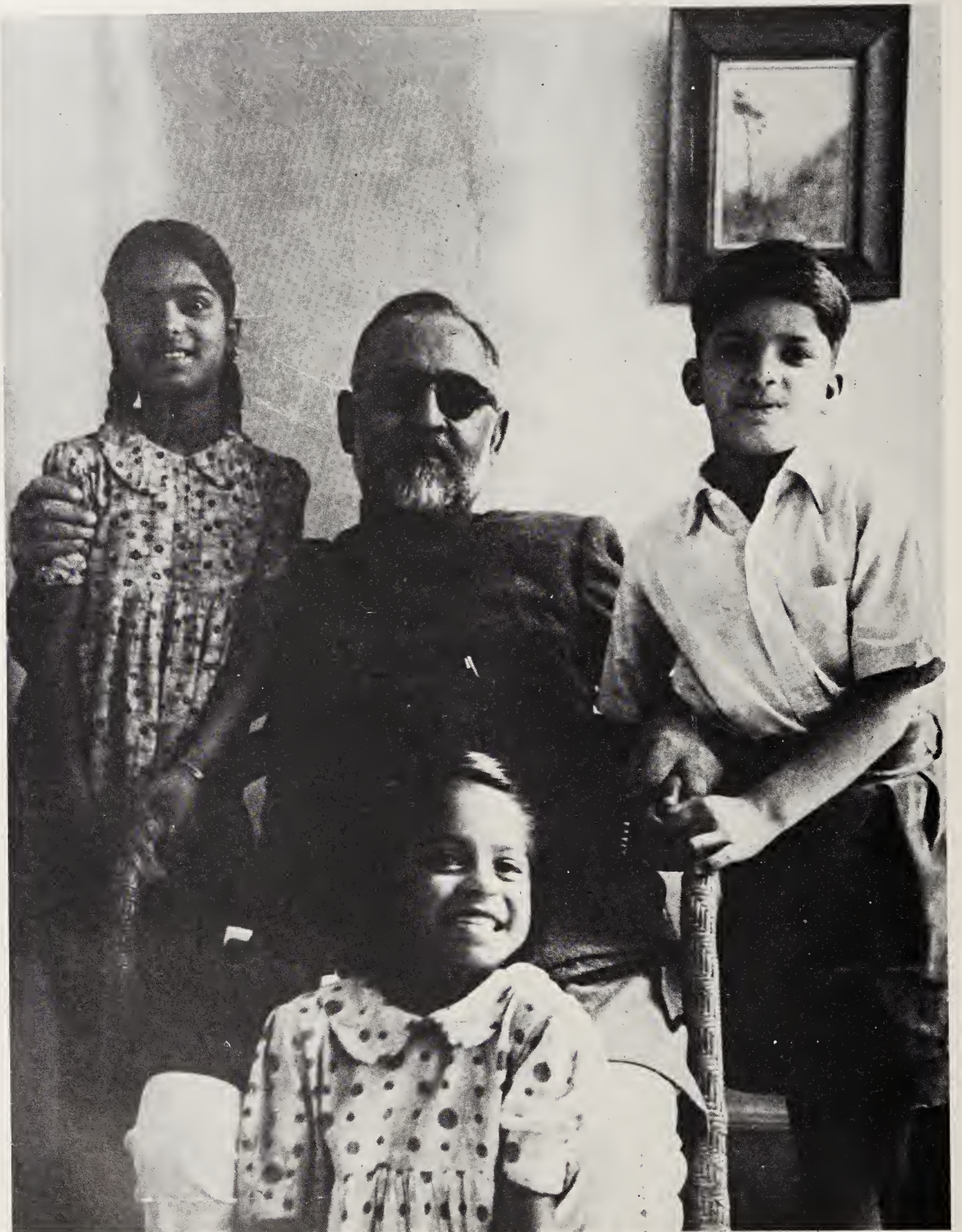
जामिया परिसर में
At the Jamia



जर्मनी प्रवास के समय
In Germany



एक जर्मन मित्र के साथ
With a German friend



स्कूली बच्चों के साथ,
With school children



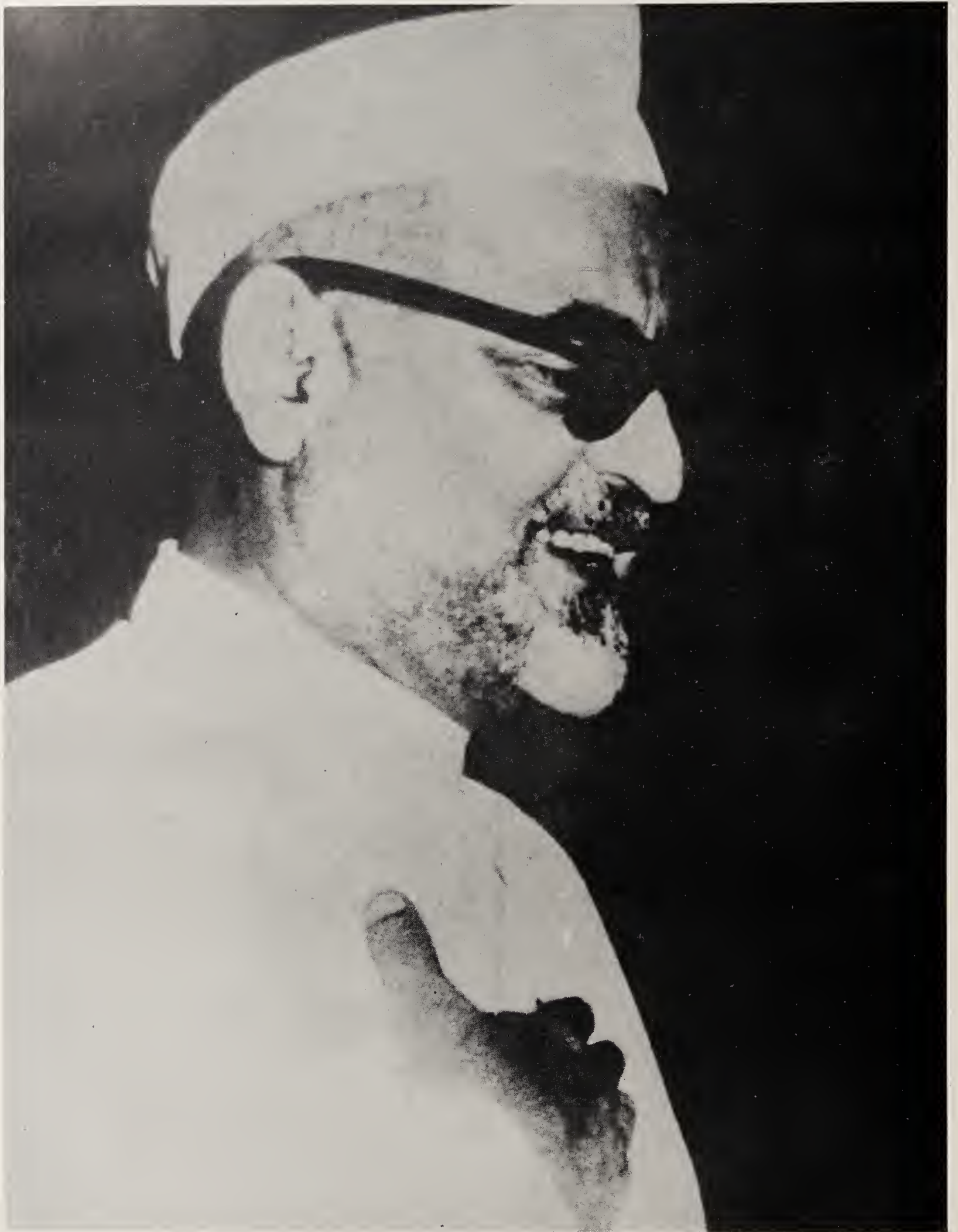
गांधीजी के अनुगामी

In the shadow of the Mahatma



पं. नेहरू के साथ

With Pt. Nehru



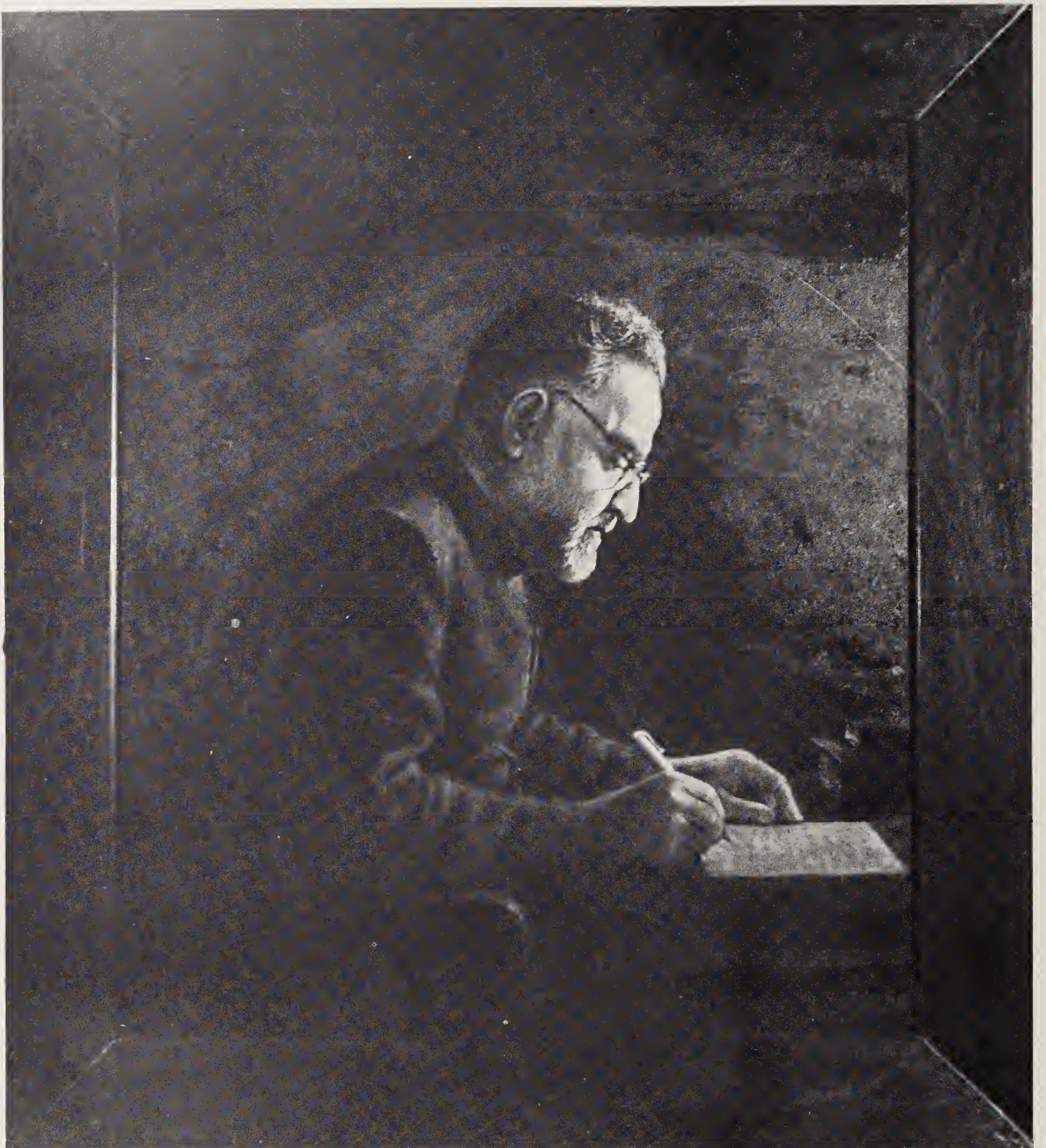
प्रसन्न मुद्रा मे
In a jocund mood



अलीगढ़ विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के अवसर पर राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के साथ-1952
With President Dr. Rajendra Prasad at the Aligarh Muslim University Convocation-1952



उपकुलपति डॉ. हुसैन और राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद-1952
Vice-Chancellor Dr. Husain with President Dr. Rajendra Prasad-1952



अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति - एक रंगीन चित्र
Vice-Chancellor, Aligarh Muslim University—a Colour portrait



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का स्वागत करते हुए-1952

Receiving President Dr. Rajendra Prasad at the Aligarh Muslim University - 1952



राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के साथ

With President Rajendra Prasad



पश्चिमी एशिया के एक देश में
In a West Asian country



डाक्टरेट की मानद उपाधि से विभूषित
Receiving the Doctorate (honoris causa)



अलीगढ़ विश्वविद्यालय में कर्नल बी.एच. जैदी के साथ
With Col. B.H. Zaidi at the Aligarh Muslim University



अलीगढ़ विश्वविद्यालय में दीक्षांत समारोह के अवसर पर
At the Aligarh Muslim University Convocation



नवाब छतारी के नेतृत्व में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में
With Nawab Chhatari leading the Aligarh Muslim University Convocation procession



सैय्यदना ताहिर सैफुद्दीन के द्वारा दिये गये भाषण के अवसर पर
At a lecture delivered by Syedna Taher Saifuddin



जामिया मिल्लिया इस्लामिया के प्रथम दीक्षान्त समारोह के अवसर पर, अलीगढ़-1921
 At the first Convocation of the Jamia Millia Islamia, Aligarh-1921



Left to right :

Rai Bahadur K. N. Mitra; Dr. Morgan (Member, Commission); Principal P. K. Bose; Dr. Duff (Member Commission);
 Dr. Zakir Hussain (Member, Commission); Dr. Tigert (Member, Commission); Dr. Bahl (Member, Commission);
 Mr S. N. Mitra (Vice-Principal, Commerce Department); Dr. Saha (Member, Commission); Dr. Sidhanta (Member,
 Commission); Mr. P. N. Banerjee, (Vice-Chancellor, Calcutta University)



विश्वविद्यालय आयोग के सदस्य के रूप में बंगवर्सी महाविद्यालय में स्वागत-1949

Being received as a member of the Universities Commission at Bangabasi College - 1949



दीक्षांत भाषण के पश्चात् प्रो. मुजीब और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय विद्यार्थी संघ के सदस्यों के साथ-1957

With Prof. M. Mujeeb and members of Aligarh Muslim University Students Union after delivering the Convocation Address-1957



अलीगढ़ में खल्पाहार के समय
At a tea party in Aligarh



कुलाधिपति सेय्यदना ताहिर सैफुद्दीन के साथ सउदी अरब के शाह के स्वागत समारोह के अवसर पर
At a reception to King of Saudi Arabia with the Chancellor Syedna Taher Saifuddin



अलीगढ़ विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्षों के साथ
With Heads of the Aligarh Muslim University Departments



सैय्यदना को अभिनन्दन पत्र भेंट करते हुये
Presenting the Address of Welcome to Syedna



राधाकृष्णन आयोग के सदस्यों के साथ
With members of the Radhakrishnan Commission



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के विशिष्ट दीक्षांत समारोह में सउदी अरब के शाह को "डाक्टरेट" की मानद उपाधि से विभूषित करते हुए
Conferring the Doctorate honoris-causa on the King of Saudi Arabia at the special Convocation of the Aligarh Muslim University



Sitting (L. to R.):—Dr. Abid Ali, (Treasurer) Mr. Jamshed Rahim, (Librarian) Mr. Hafeez Zaidi, (Hony. Secretary)
 Mr. Fasihuddin Ahmad, (Vice-President) Dr Zakir Hussain Khan, (President) Mr. Hasan Ata, (Ex-Vice-President)
 Mr. Riaz Ahmad Khan, (Ex-Hony. Secretary) Mr. Mohd. Muriza, (Ex-Librarian).

Standing, first Row, Outgoing Cabinet Members (L. to R.):—
 Messrs Mohd Iqbal, Nauman Shibli, Abdur Rashid, Mohd. Zobair, S. U. Sabir, Ghyasuddin, Moinuddin, Farid Alam,
 Imam Hadi, Wazir Ahmad.

Second Row, Incoming Cabinet Members (L. to R.):—
 Messrs. Afear Ali, Zia Ali, Anwar Khan, Saeedushafi, Badre Alam, Saifuddin, Abu Raihan, Maudood Hasan, Muzzafar Ahmad.

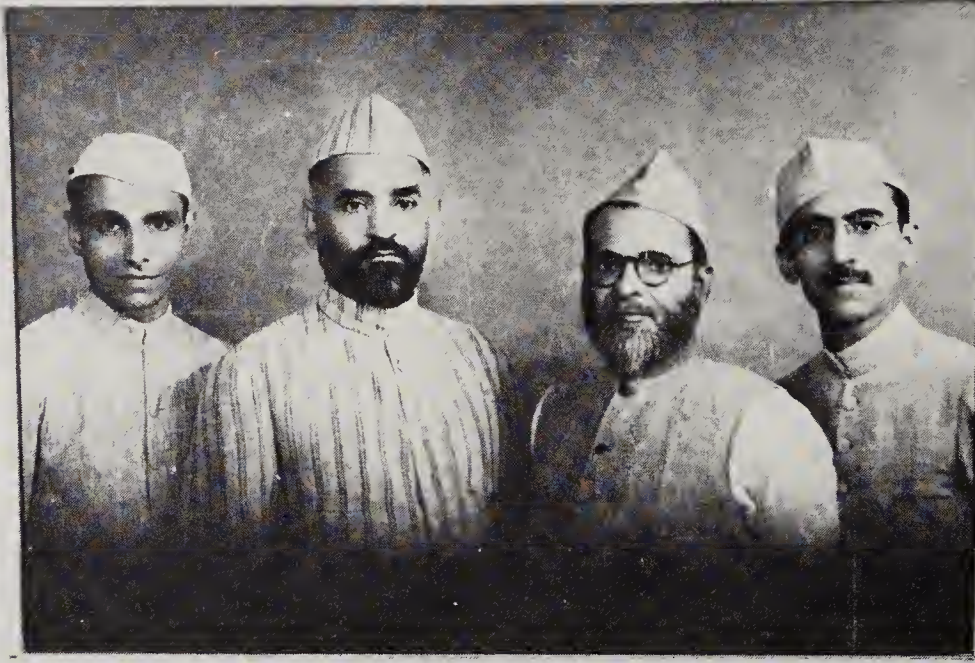
अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी संघ के सदस्यों के साथ-1949

With members of the Aligarh Muslim University Students Union - 1949



लंदन में यूनेस्को की बैठक में भाग लेते हुए
At the UNESCO meeting in London

جامعہ کے چار پُرانے طالبِ علم



غلام احمد کاشمیری شفیق الرحمن قدوائی ڈاکر حسین معین الدین حارث

جامیہ کے بھوتپُورِ ویڈیارتھی شافی کورہمان کیدوئی، موینوڈین ہاریس تہا گولام اہمد کاشمیری کے ساٹھ
With distinguished Jamiates Shafiqur Rahman Kidwai, Moinuddin Haris and Gulam Ahmed Kashmiri



حکیم اجمل خاں (امیر جامعہ) افریقی مہمانوں اور اساتذہ جامعہ کے درمیان

جامیہ میں کولادھپت ہکیم اجمل خاں اور افریقی مہمانوں کے ساٹھ-1927
With Chancellor Hakim Ajmal Khan and guests from Africa at the Jamia-1927

بنیادی تعلیمی کانفرنس معائنہ



جامعہ اسکالرشپ مہمانوں کا ختم مقدم کر رہے ہیں

جامیہا نگر में आयोजित बुनियादी तालीम सम्मेलन में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, अब्दुल मजीद ख्वाजा, के.जी. सैय्यदेन तथा अन्य नेताओं के साथ-1939

With Dr. Rajendra Prasad Abdul Majeed Khwaja, K.G. Saiyidain and others in the Basic Education Conference Jamia Nagar-1939

کابینہ انجمن اتحاد المسلمین



جامیہا ویڈیالہی ویڈیاریہی سہی، انننننن-ہ-ہتیہاد، کہ سادسویہی کہ سادھ-1942
With the members of Jamia Students Union - Anjuman-i-Ittehad - 1942

بنیادی تعلیمی کانفرنس معہنگ

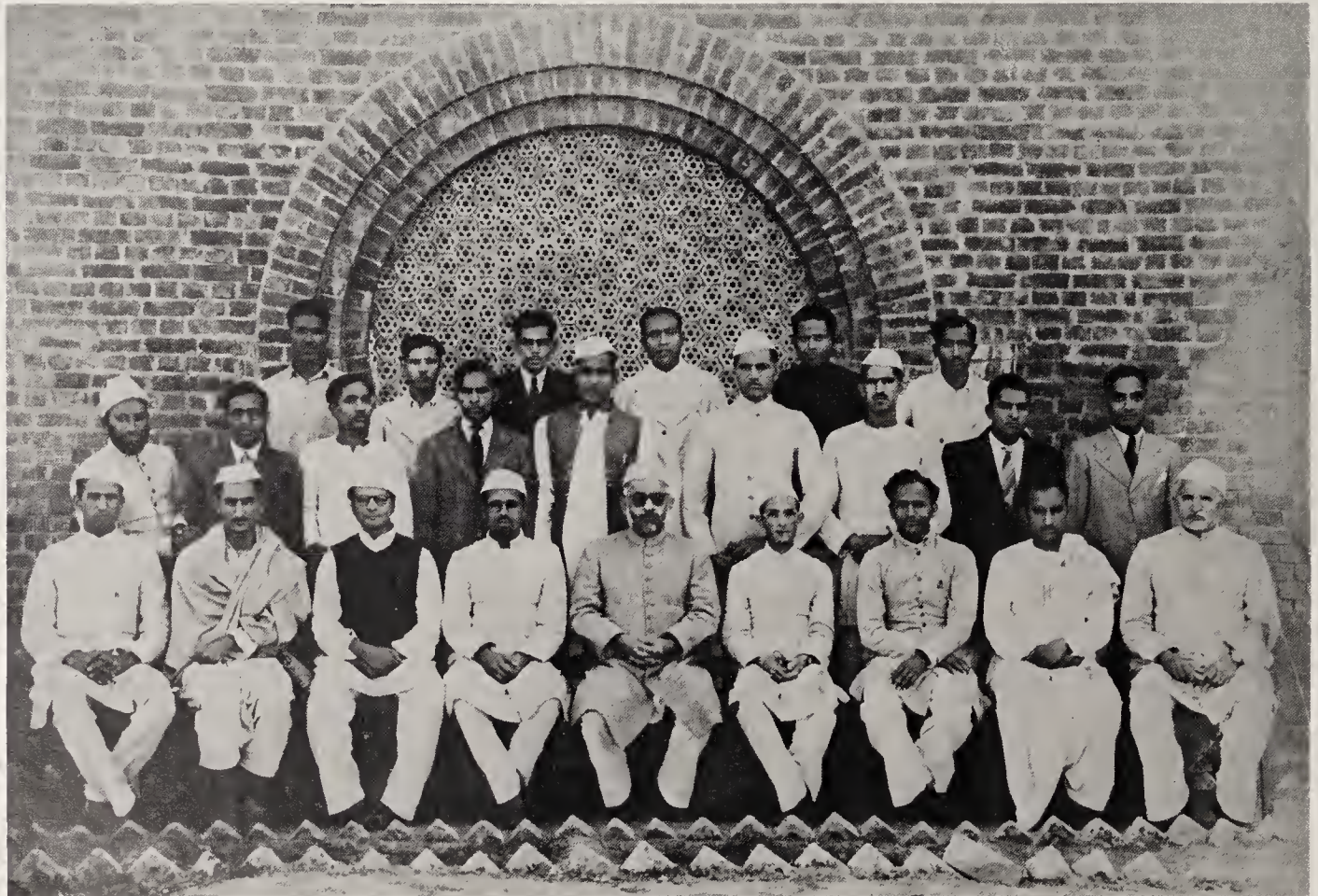


مہمانوں کی ذاکر فنا کی معیت میں پنڈال کی طرف روانگی

जामिया मिल्लिया इस्लामिया में आयोजित बुनियादी तालीम सम्मेलन में राष्ट्रीय नेताओं के साथ
With national leaders at the Basic Education Conference Jamia Millia Islamia



करोलबाग, दिल्ली में जामिया के शिक्षको और विद्यार्थियों के साथ-1933
 With students and Jamia teachers at Karol Bagh, Delhi-1933



जामिया शिक्षक महाविद्यालय के कर्मचारी तथा विद्यार्थियों के साथ बुनियादी शिक्षा के पुन श्रुर्था पाठ्यक्रम के अवसर पर-1947
 With the Jamia Teachers College staff and students at a refresher course in Basic Education - 1947



अब्दुल मजीद ख्वाजा, मौलवी अब्दुल हक और डॉ. एम.ए. अन्सारी के साथ-1929
With Abdul Majeed Khwaja, Maulvi Abdul Haq and Dr. M.A. Ansari - 1929



जामिया के शिक्षक सेयद अहमद अली के साथ
With a Jamia teacher, Syed Ahmad Ali



अन्जुमन-ए-जामिया की परिषद के सदस्यों के साथ-1950
With council members of Anjuman-i-Jamia-1950



उपकुलपति, जामिया
As Shaikh-ul-Jamia



जर्मनी की यात्रा के समय उपकुलपति -1939

Shaikh-ul-Jamia during a visit to Germany - 1939

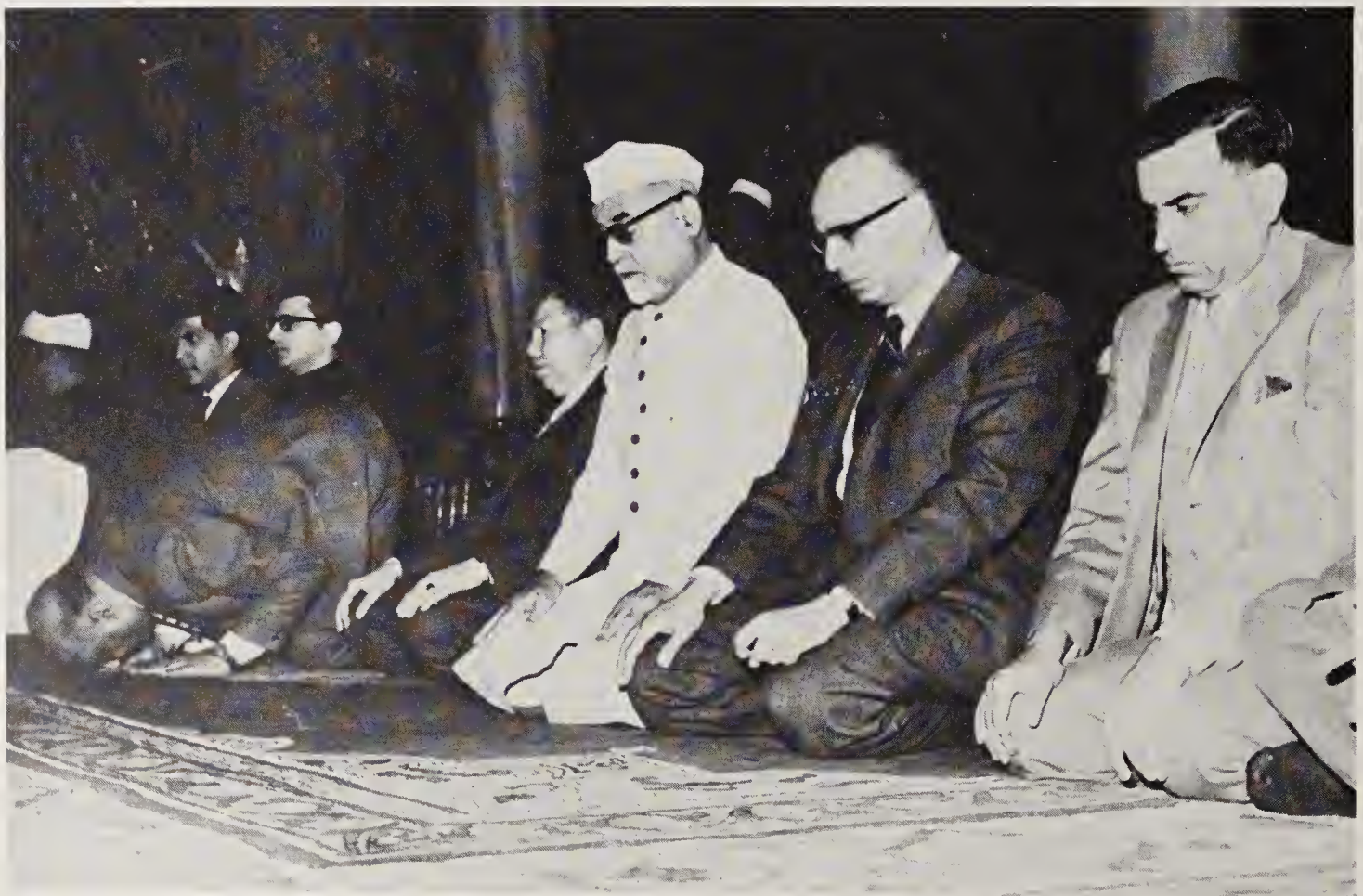


उपकुलपति डॉ. जाकिर हुसैन-एक अन्य छवि-1939

Another portrait of Dr. Zakir Husain, Shaikh-ul-Jamia-1939



वर्धा में परामर्शदाता महात्मा गांधी के साथ 1939
With the mentor, Mahatma Gandhi at Wardha-1939



इफ्तार के समारोह के उपरान्त प्रार्थना
Praying after an Iftar party



जामिया में अपने सहयोगियों के साथ
With Jamia colleagues



अध्ययन में लीन
Absorbed in reading



बिहार के राज्यपाल पद की शपथ ग्रहण करते हुए-1957
Swearing-in ceremony as the Governor of Bihar-1957



दिल्ली में राज्यपालों के सम्मेलन में-1961
At Governors' Conference, Delhi - 1961



बिहार के राज्यपाल
As Governor of Bihar



पटना विश्वविद्यालय के कुलाधिपति
As Chancellor of the Patna University



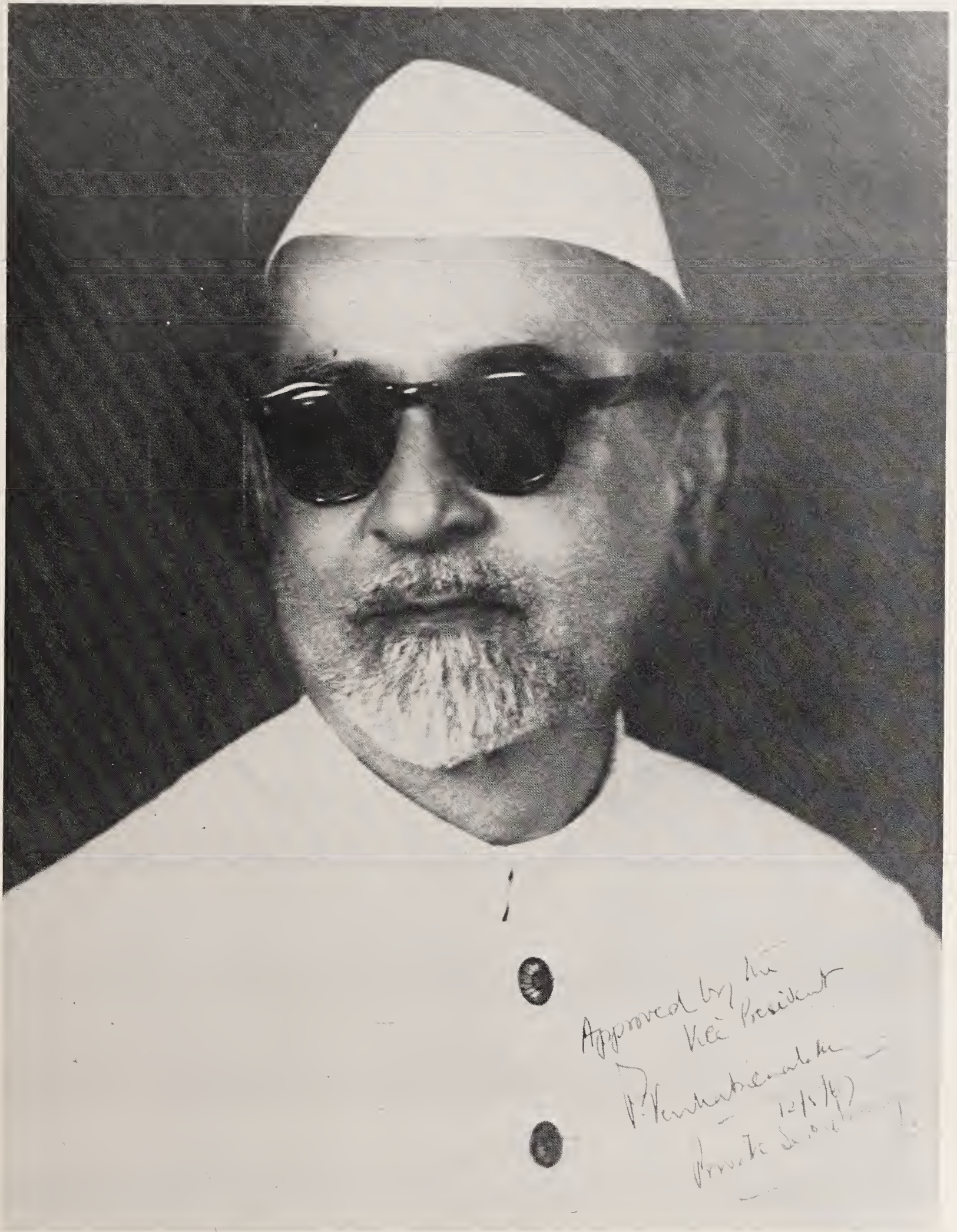
एक मुलाकाती के साथ
With a visitor



राजभवन में कर्मचारियों के साथ, पटना
With Raj Bhavan staff at Patna



एक संगीत समारोह में
At a musical concert



उपराष्ट्रपति का चित्र
A portrait of the Vice-President



अहमदाबाद में रोटरी क्लब के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए
Addressing the Rotarians at Ahmedabad



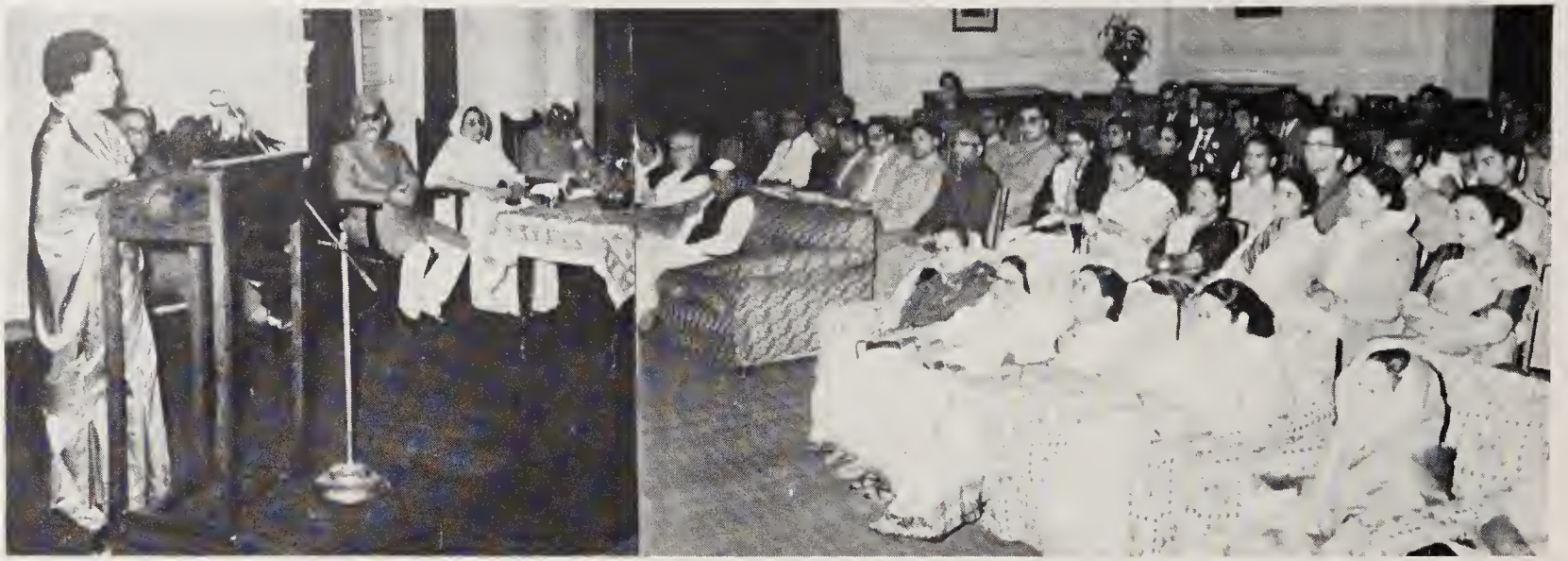
पटना में हस्तकला प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए
At a handicraft exhibition in Patna



समाजसेवी कार्यकर्ताओं के साथ
With social workers



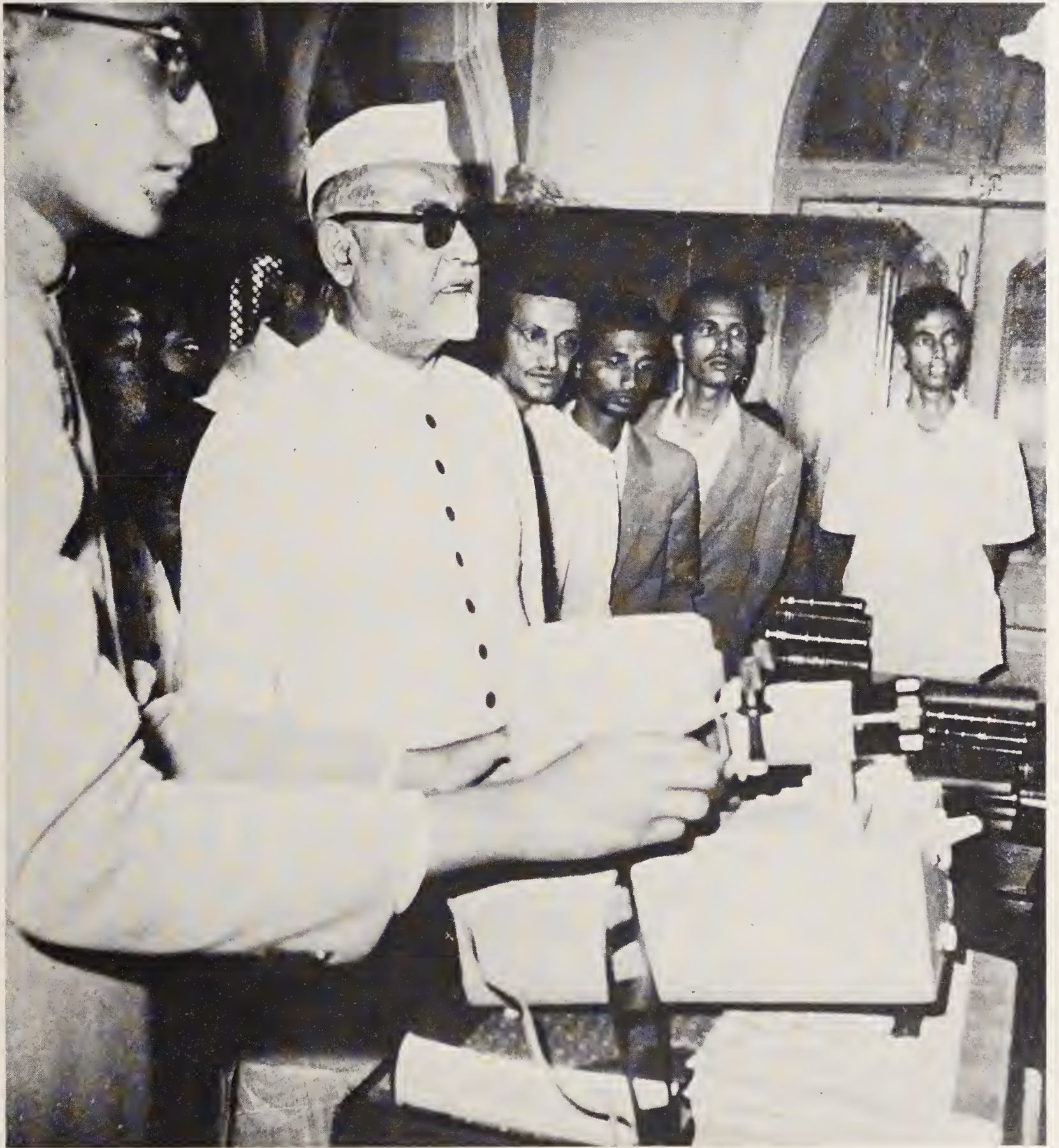
एन. सी. सी. कैडेटों द्वारा अभिवादन
Being greeted by the N.C.C. Cadets



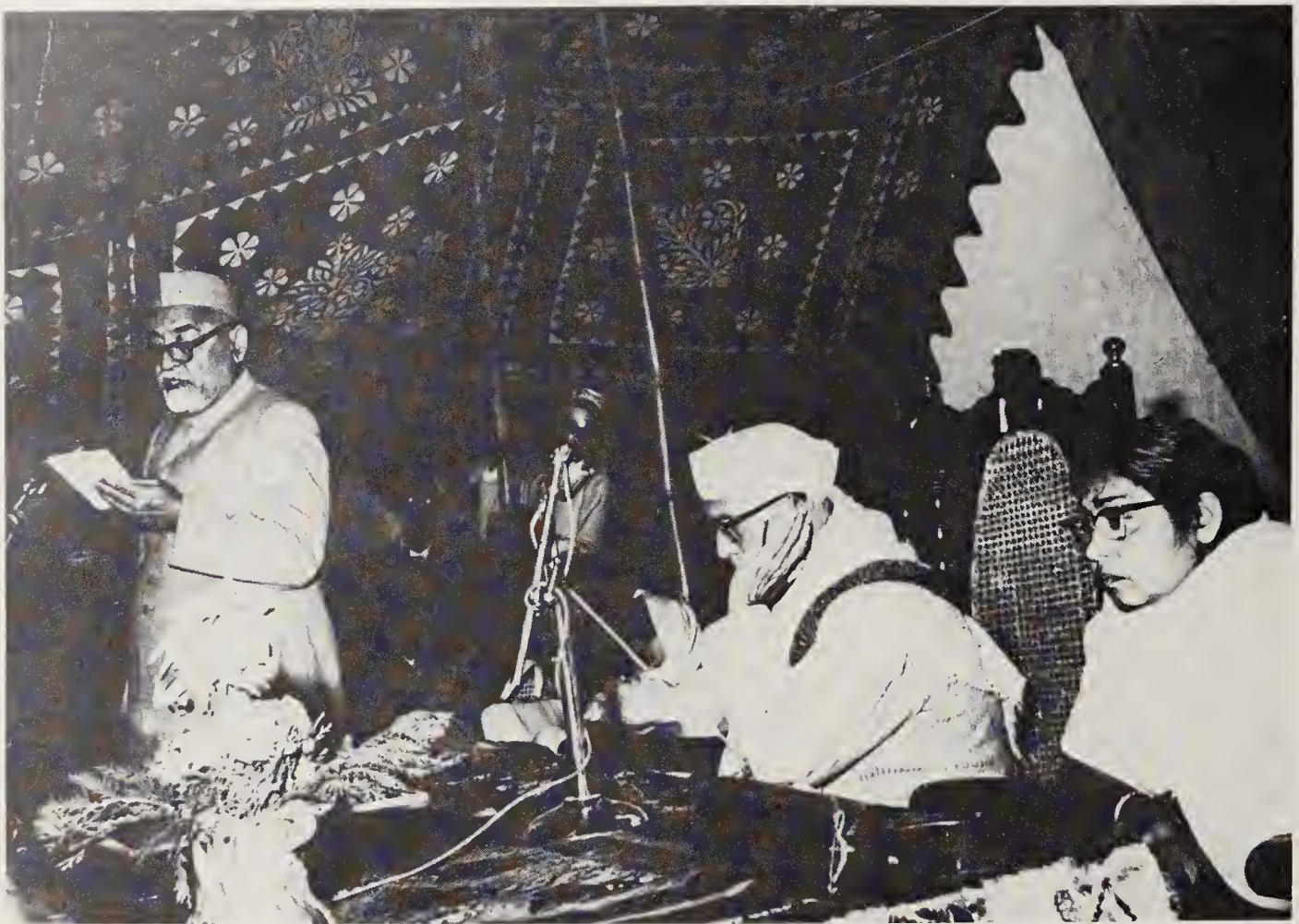
एक सामाजिक समारोह में
At a social gathering



श्रीनगर में बच्चों के साथ
Enjoying the company of children at Srinagar



बिहार में शिक्षाविदों के साथ
With academicians in Bihar



रचनात्मक कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए
Addressing constructive workers



दिल्ली के एक सामाजिक समारोह में
At a social gathering in Delhi



एक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए
Inaugurating an exhibition



हैदराबाद में एक अनूठे कालीन की प्रशंसा करते हुए
Admiring a rare carpet in Hyderabad



राष्ट्रपति राधाकृष्णन के साथ

With President Radhakrishnan



भारत रत्न ग्रहण करते हुए
Receiving the Bharat Ratna



लाल बहादुर शास्त्री के साथ
With Lal Bahadur Shastri



प्रधानमंत्री पं. नेहरू और उनके मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के साथ
With Prime Minister Pt. Nehru and his cabinet colleagues



विज्ञान भवन की एक बैठक में
In a meeting at Vigyan Bhavan



STANDING (Left to Right)—

The Lt.-Governor of Himachal Pradesh The Governor of Punjab The Governor of Assam The Governor of Bihar The Governor of Orissa The Governor of Maharashtra The Lt.-Governor of Goa, Daman & Diu

SITTING (Left to Right)—

The Governor of Gujarat The Governor of Madras The Governor of Kerala The Governor of Mysore The Vice-President THE PRESIDENT The Prime Minister The Sadar-i-Riyasat of Jammu & Kashmir The Governor of Madhya Pradesh The Governor of Andhra Pradesh The Governor of Uttar Pradesh

राष्ट्रपति राधाकृष्णन, प्रधानमंत्री नेहरू एवं राज्यों के राज्यपालों के साथ-1962

With President Radhakrishnan, Prime Minister Nehru and Governors of states - 1962



STANDING (Left to Right)—
 The Lieut.-Governor of Pondicherry. The Lieut.-Governor of Himachal Pradesh. The Governor of Punjab. The Governor of Assam. The Governor of Bihar. The Governor of Orissa. The Governor of Maharashtra. The Lieut.-Governor of Goa, Daman & Diu.

SITTING (Left to Right)—
 The Governor of Uttar Pradesh. The Governor of Madras. The Governor of Kerala. The Sadar-i-Riyasat of Jammu & Kashmir. The Vice-President. THE PRESIDENT. The Prime Minister. The Governor of West Bengal. The Governor of Madhya Pradesh. The Governor of Andhra Pradesh. The Governor of Rajasthan.

राष्ट्रपति राधाकृष्णन, प्रधानमंत्री नेहरू एवं राज्यों के राज्यपालों के साथ राज्यपाल सम्मेलन में-1963

With President Radhakrishnan, Prime Minister Nehru and Governors of states at the Governors Conference-1963



(Top Row, Left to Right)

The Lieut. Governor of Pondicherry, The Lieut. Governor of Himachal Pradesh, The Governor of Punjab, The Governor of Orissa, The Governor of Assam, The Governor of Andhra Pradesh, The Governor of Madharashtra, The Lieut. Governor of Goa, Daman & Diu

(Bottom Row)

The Governor of West Bengal, The Governor of Gujarat, The Governor of Madhya Pradesh, The Sadr-ul-Riyasat of Jammu & Kashmir, The Vice President, THE PRESIDENT, Prime Minister, The Governor of Kerala, The Governor of Mysore, The Governor of Uttar Pradesh, The Governor of Bihar

राष्ट्रपति राधाकृष्णन, प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री एवं विविध राज्यों के राज्यपालों के साथ राज्यपाल सम्मेलन में 1964
 With President Radhakrishnan, Prime Minister Shastri and Governors of various states at the Governors' Conference-1964



STANDING (Left to Right)—

The Lieut.-Governor of Goa, Daman & Diu. The Lieut.-Governor of Himachal Pradesh. The Governor of Gujarat. The Governor of Madhya Pradesh. The Governor of Andhra Pradesh. The Governor of Orissa. The Governor of Maharashtra. The Governor of Kerala. The Governor of Punjab. The Lieut.-Governor of Pondicherry.

SITTING (Left to Right)—

The Governor of Bihar. The Governor of Uttar Pradesh. The Governor of West Bengal. The Governor of Madras. The Vice-President. THE PRESIDENT. The Prime Minister. The Governor of Jammu & Kashmir. The Governor of Mysore. The Governor of Rajasthan. The Governor of Assam.

राष्ट्रपति राधाकृष्णन, प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री एवं विविध राज्यों के राज्यपालों के साथ राज्यपाल सम्मेलन में - 1965

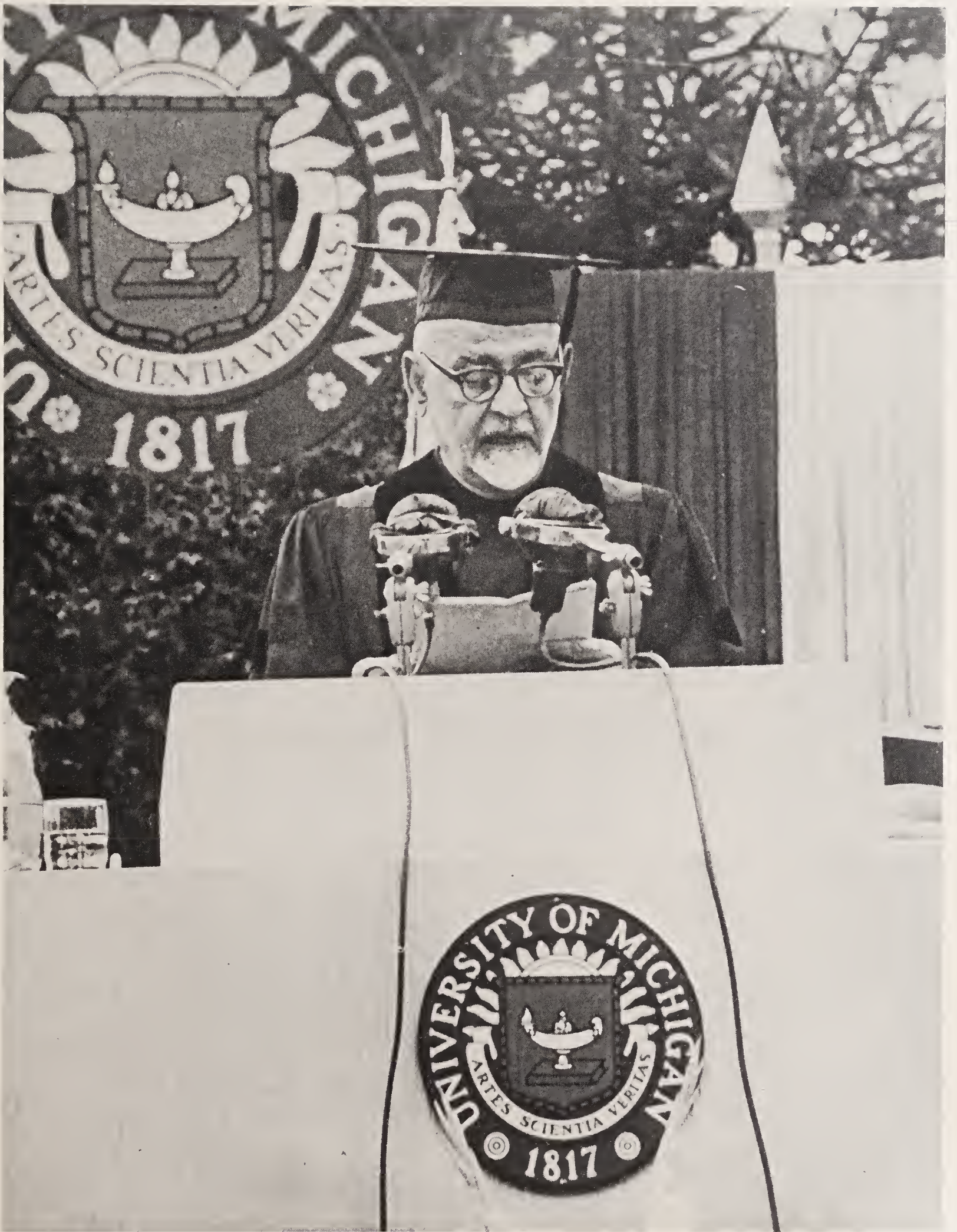
With President Radhakrishnan, Prime Minister Shastri and Governors of various states at the Governor's Conference-1965



दिल्ली में शाह कलीमुल्लाह के उर्स के अवसर पर
At the Urs of Shah Kalimullah, Delhi



दक्षिण भारतीय कलाकार द्वारा अभिनन्दन
Being greeted by a South Indian artist



मिशीगन विश्वविद्यालय अमेरिका के दीक्षांत समारोह में भाषण देते हुए-1967

Delivering the Convocation Address at the Michigan University, USA - 1967



Seated (L to R) : Mrs. Mehra D. Malegamvala, Shri J. N. Mankar, Shri G. R. Rajagopaul, Smt. Rukmini Devi Arundale, Dr. Zakir Husain, Miss Freany H. Wadia, Shri Dharma Lal Singh, Dr. Dev Raj Narang and Shri M. S. Palaniappa Mudaliar.

Standing (L to R) : Shri Santokh Singh, Dr. P. Bhattacharva, Dr. P. N. V. Kurup, Shri D. H. Kulkarni, Shri Vithwambara Prasad Sharma, Dr. V.S. Atwar and Shri C. R. N. Swamy.

SIMLA STUDIOS

पशु कल्याण बोर्ड में प्राणिमित्र पुरस्कार पाने वालों के साथ-1967

With the Animal Welfare Board Prani-Mitra awardees - 1967



एक शिक्षा सम्मेलन में
At an educational conference



झंडा प्रदान समारोह से लौटते हुए
Returning from the colour presentation ceremony



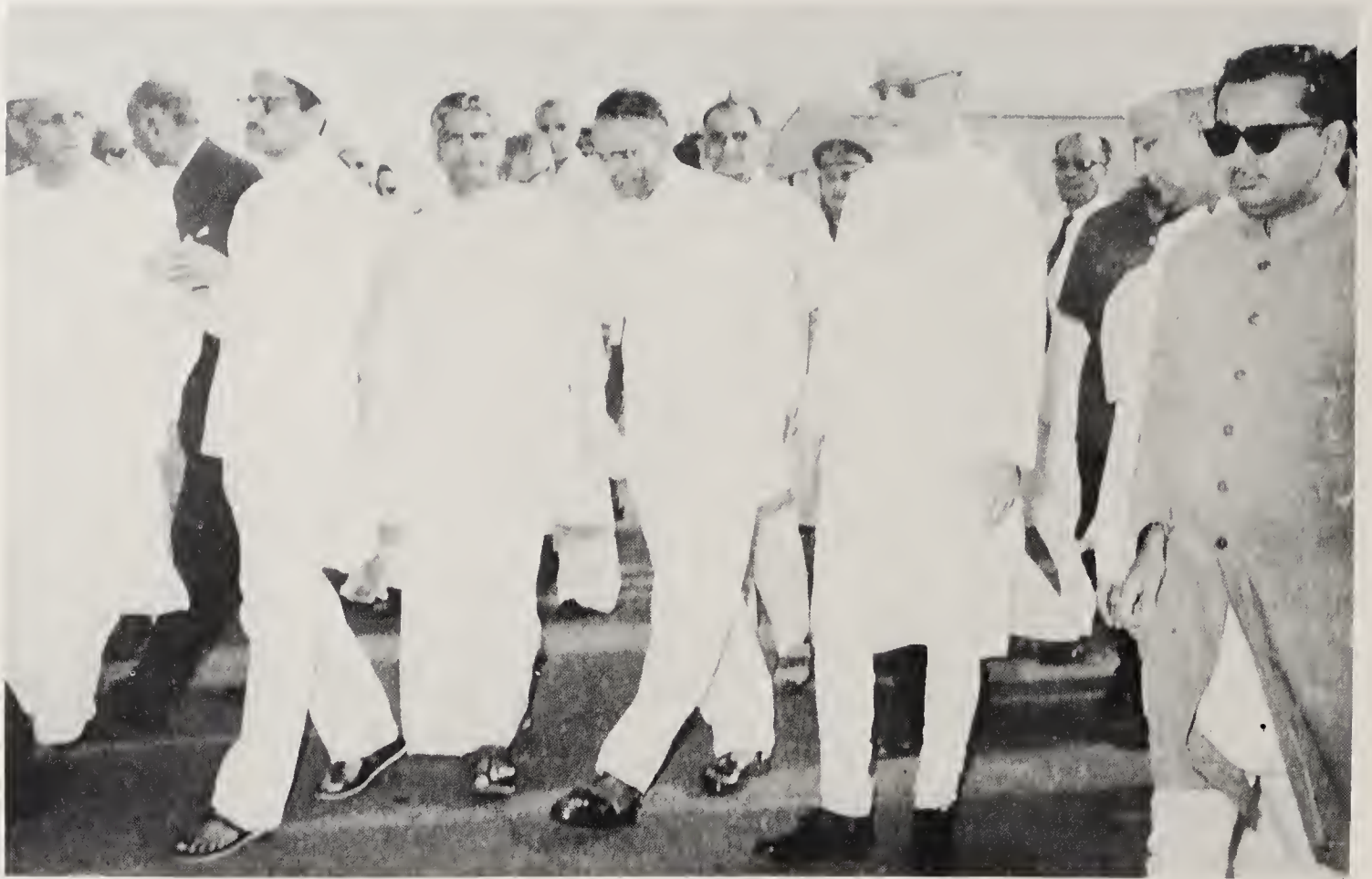
एक सांस्कृतिक समारोह में स्वागत
Being greeted at a cultural programme



हैदराबाद के बेगमपेट हवाई अड्डे पर
At Begumpet Airport, Hyderabad



विदेशी अतिथियों के साथ
With foreign guests



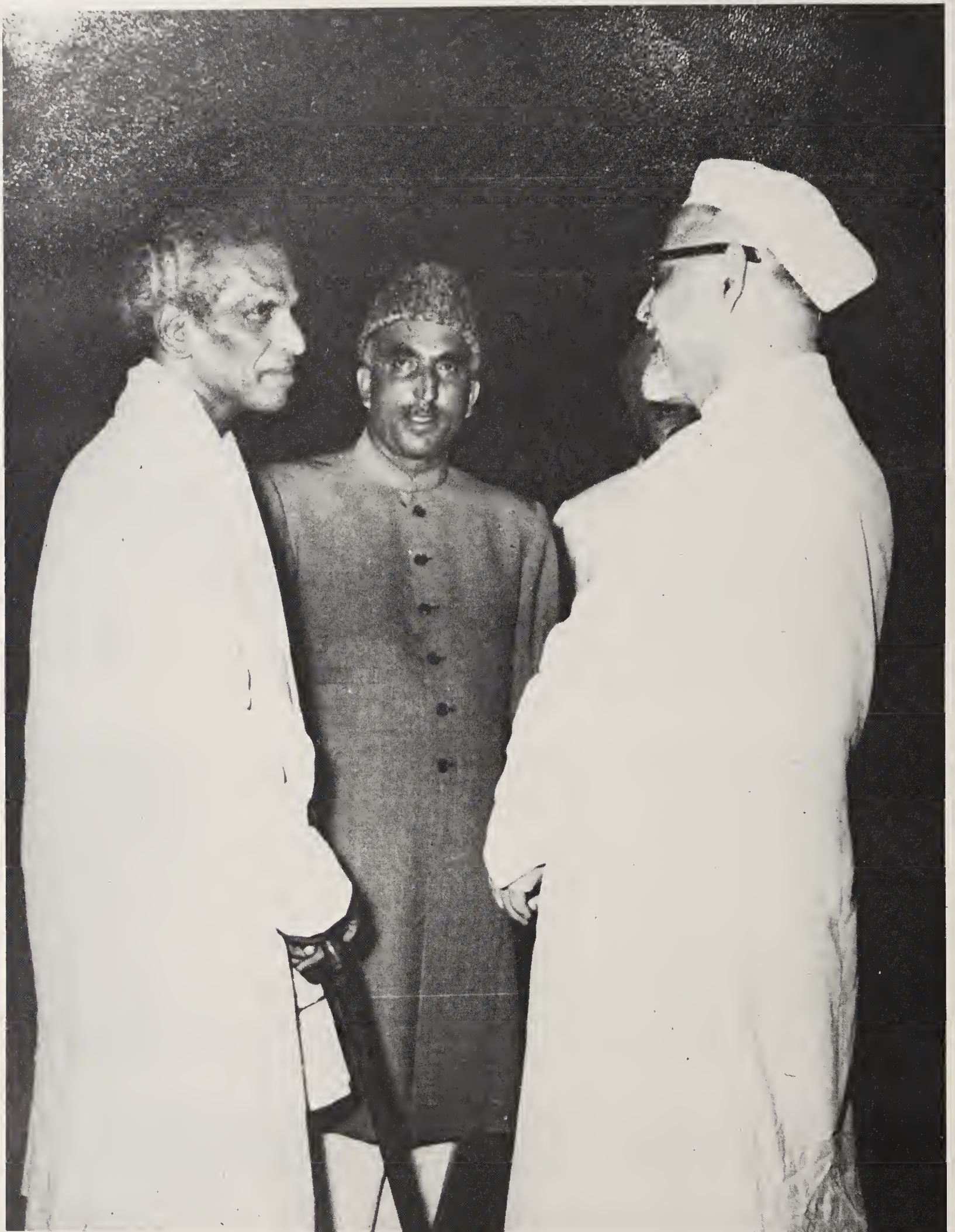
विदेश यात्रा से लौटने पर मंत्रि परिषद् द्वारा अभिनन्दन
Being received by Cabinet Ministers on return from abroad



विदेश यात्रा
Visit abroad



हजरत निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह पर ख्वाजा ज़ामिन निज़ामी द्वारा स्वागत
Being greeted by Khwaja Zamin Nizami at the Dargah of Hazrat Nizumuddin Auliya



वी.के. कृष्णामेनन और बख्शी गुलाम मोहम्मद के साथ
With V.K. Krishna Menon and Bakshi Ghulam Mohammed



राष्ट्रपति राधाकृष्णन को पुष्प अर्पित करते हुए
Presenting flowers to President Radhakrishnan



राष्ट्रपति राधाकृष्णन के साथ
With President Radhakrishnan



प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के साथ
With Prime Minister Lal Bahadur Shastri



प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ
With Prime Minister Indira Gandhi



मोरारजी देसाई के साथ
With Morarji Desai



शेख अब्दुल्ला से गले मिलते हुए
Warmly embracing Sheikh Abdullah



प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की पुण्यतिथि पर
At the death anniversary of Prime Minister Shastri



शाह कलीमुल्ला के उर्स के अवसर पर साहिबजादा मुस्तहसन फारुकी द्वारा अभिनन्दन
Being received by Sahibzada Mustahasn Faruqui at the Urs of Shah Kalimullah



पुस्तकों के मध्य
In the midst of books



दिल्ली के महापौर वकील नूरुद्दीन के साथ
With Barrister Nuruddin, the Mayor of Delhi



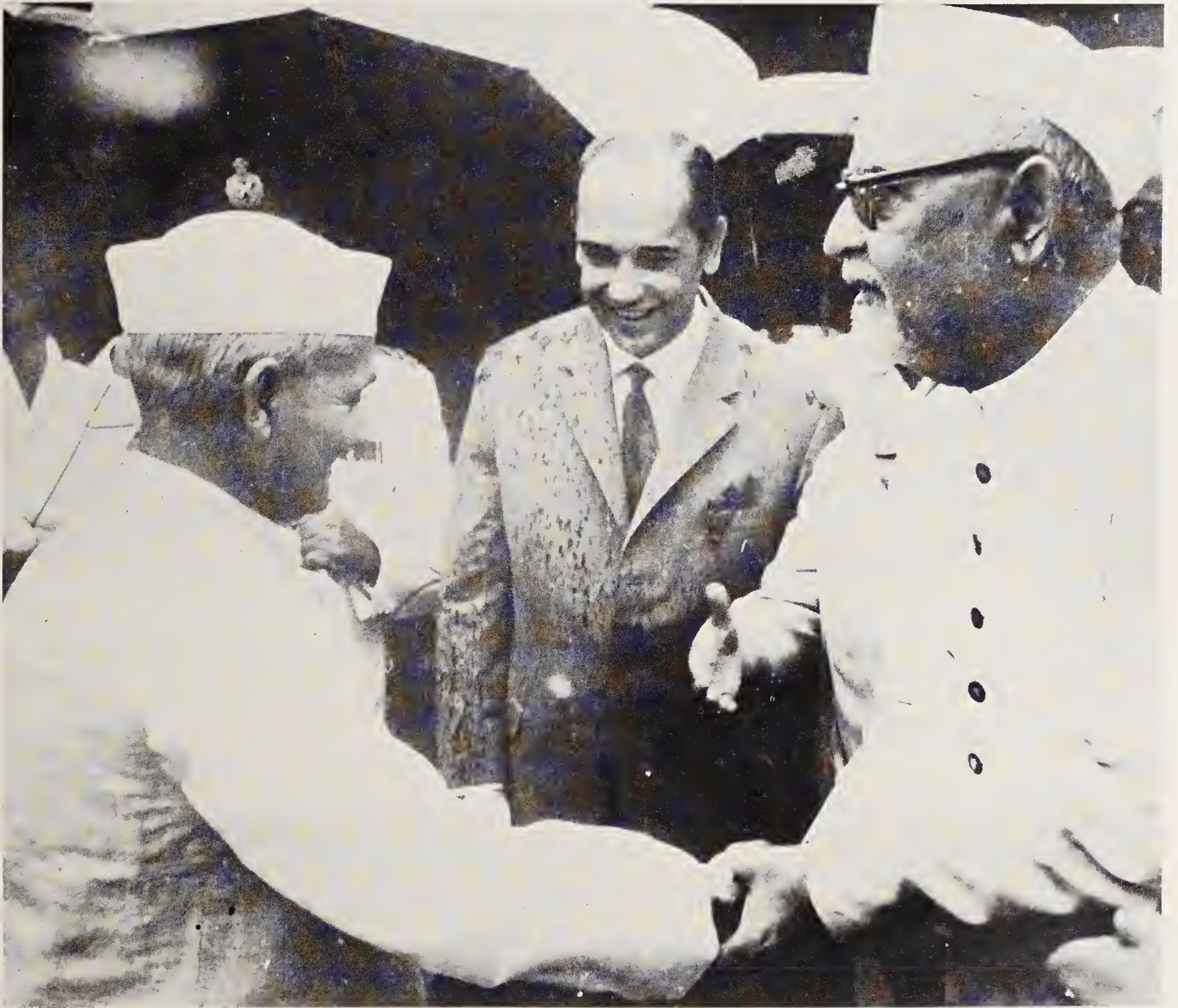
एक समारोह में दिल्ली के महापौर के साथ
At a function with the Mayor of Delhi



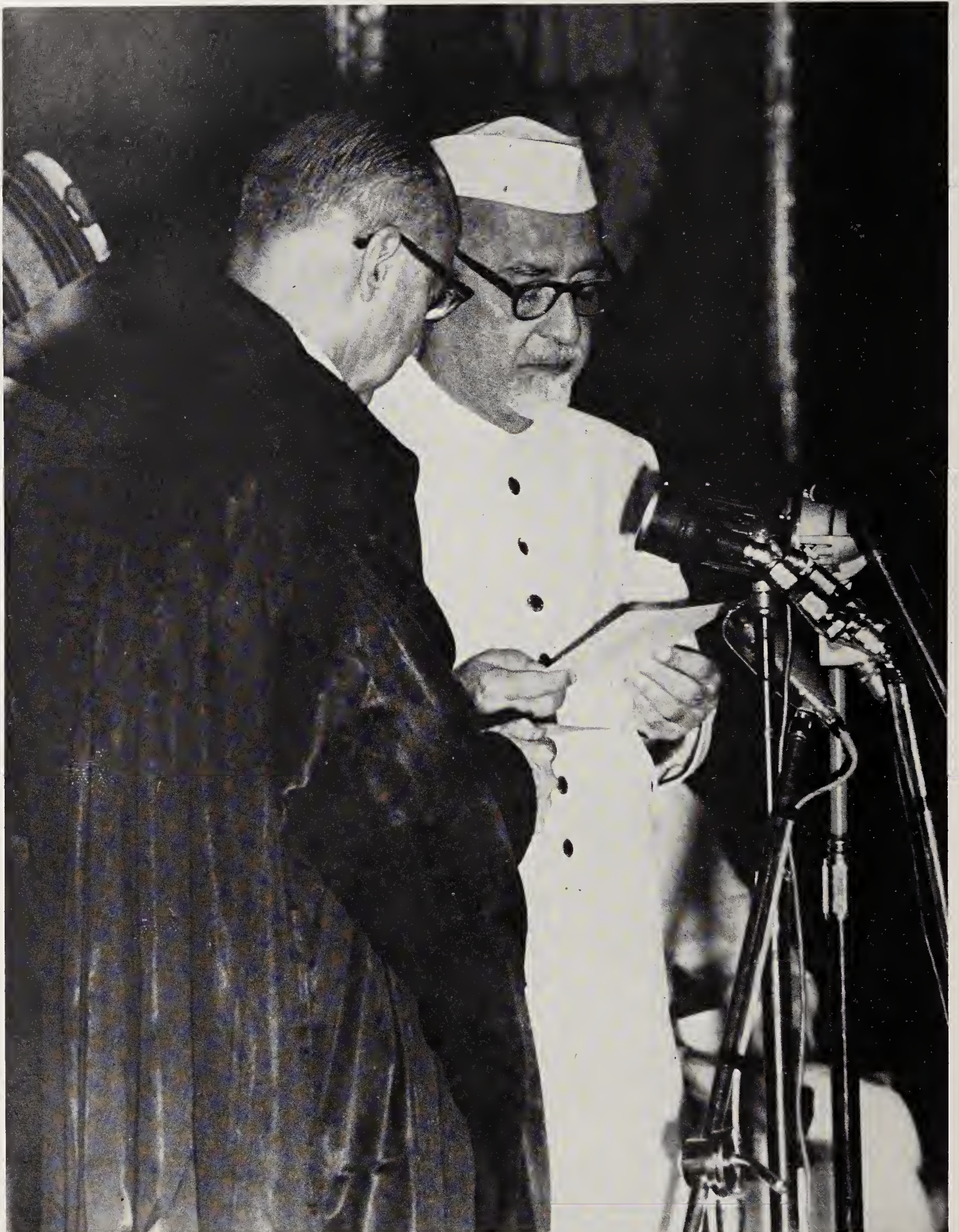
दिल्ली के महापौर बैरिस्टर नूरुद्दीन द्वारा स्वागत
Being received by Barrister Nuruddin, the Mayor of Delhi



विदेशी अतिथियों का स्वागत करते हुए
Receiving foreign dignitaries



प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के साथ
With Prime Minister Lal Bahadur Shastri



राष्ट्रपति के रूप में शपथ ग्रहण करते हुए
Being sworn in as President



भारतीय गणतन्त्र के तीसरे राष्ट्रपति के रूप में शपथ ग्रहण करते हुए
Being sworn in as the third President of Indian Republic



राष्ट्रपति भवन में प्रधानमन्त्री इन्दिरा गान्धी के साथ
With Prime Minister Indira Gandhi at Rashtrapati Bhavan



सेनाध्यक्षों के साथ
With the Chiefs of Defence Services



उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि और उप-प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के साथ
With Vice-president V.V. Giri and Deputy Prime Minister Morarji Desai



राष्ट्रपति
The President



उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि से गले मिलते हुए
Embracing the Vice-President V.V. Giri



राष्ट्रपति
The President



प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, डॉ. कर्ण सिंह और वी.के. कृष्णा मेनन के साथ नेहरू स्मारक समिति की बैठक में

At the Nehru Memorial Committee Meeting with Prime Minister Mrs. Gandhi, Dr. Karan Singh and V.K. Krishna Menon



नेहरू स्मारक समिति की बैठक में

At the Nehru Memorial Committee Meeting



राजघाट पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए
Laying floral wreath at Rajghat



शान्तिवन में
At Shantivan



नागा कन्याएं परम्परागत ढंग से स्वागत करते हुए
Being greeted by the Naga girls in traditional fashion



पुष्पांजलि ग्रहण करते हुए
Receiving floral tributes



स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री के शोकाकुल परिवार के सदस्यों को सान्त्वना देते हुए
Consoling the Prime Minister Lal Bahadur Shastri's family



उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि, प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी और सोनिया गांधी के साथ
With Vice-president V.V. Giri, Prime Minister Mrs. Indira Gandhi, Rajiv Gandhi and Sonia Gandhi



राष्ट्रपति भवन में बच्चों के साथ

With Children at Rashtrapati Bhawan



राष्ट्रपति भवन के पुष्पोद्यान में बच्चों के साथ

In the midst of young blossoms at Rashtrapati Bhawan



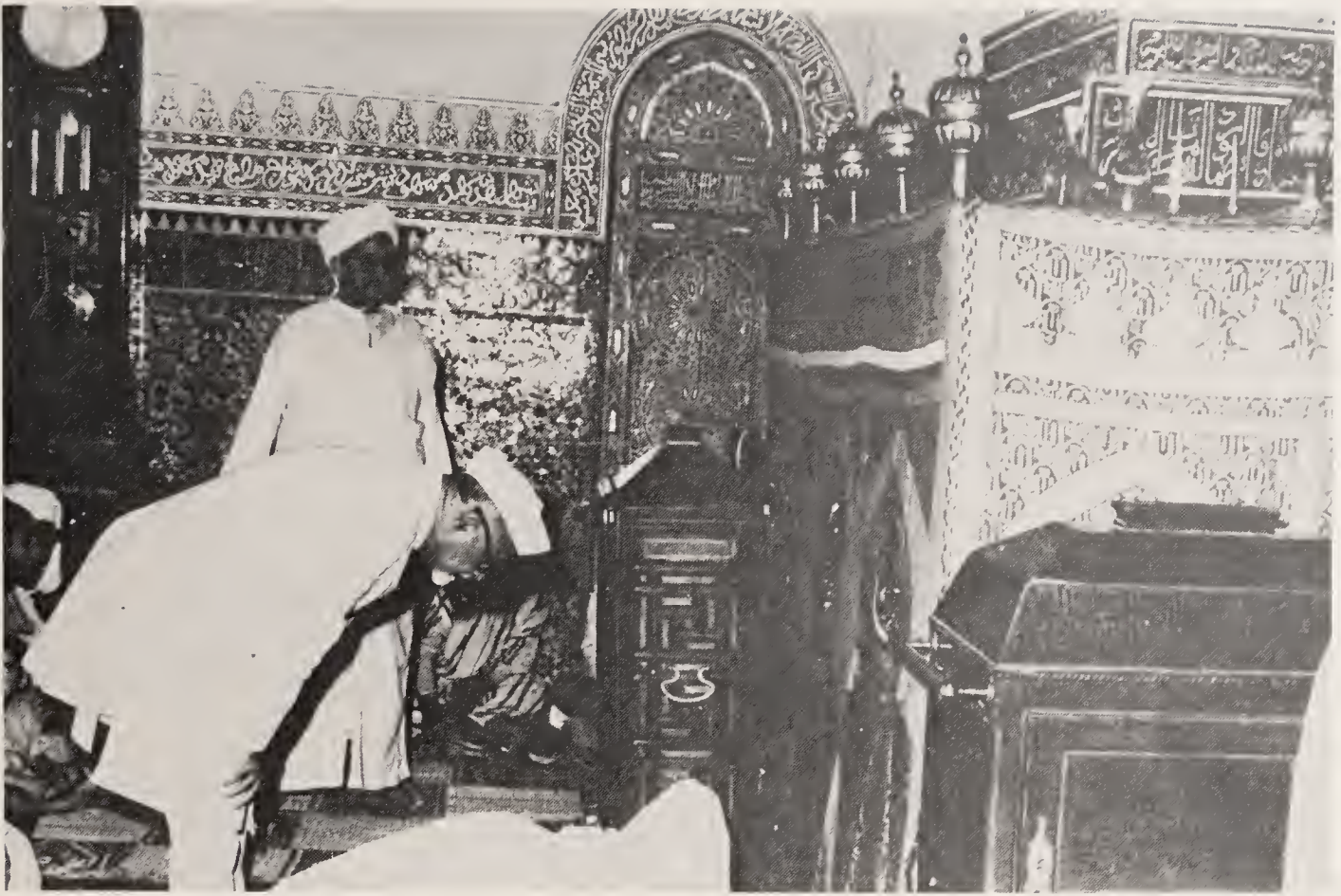
समाचार पत्र पढ़ते हुए
Reading newspaper



पटना में अपने जन्मोत्सव पर
Birthday celebration at Patna



अधिक अन्न उपजाओ अभियान का शुभारंभ करते हुए
Launching the 'Grow More Food' campaign



अल्जीरिया की भव्य मस्जिद में नमाज अदा करते हुए
Offering prayers at the Grand Mosque in Algeria



शेख कलीमुल्ला के मजार पर
At the Dargah of Shaikh Kalimullah



तिलक की प्रतिमा पर पुष्पहार अर्पित करते हुए
Laying the floral wreath at Tilak statue



आरा हवाई अड्डे पर आगमन
Being received at Arah airport



हवाई अड्डे पर स्वागत
Being received at the airport



विदेश यात्रा के दौरान भारतीय समुदाय से भेंट करते हुए
Meeting the Indian Community during a foreign tour



सी. राजगोपालाचारी के साथ
With C. Rajagopalachari



एक सभा को सम्बोधित करते हुए
Addressing a conference



सी. राजगोपालाचारी के साथ
With C. Rajagopalachari



कुमारी पद्मजा नायडू से वार्तारत
Conversing with Miss Padmaja Naidu



वाई. बी. चव्हाण के साथ
With Y.B. Chavan



सरदार पटेल जयन्ती समारोह का उद्घाटन करते हुए
Inaugurating the Sardar Patel Jayanti Samaroh



योगोस्लाविया में अपनी पुत्री और नातिन के साथ
With his daughter and grand-daughter in Yugoslavia



दस्तकार को पुरस्कृत करते हुए
Awarding a craftsman



मास्को में सोवियत प्रधानमंत्री अलेक्सी कोसीगिन द्वारा स्वागत
Being received by the Soviet Prime Minister Alexei Kosygin in Moscow



सउदी अरब के शाह फैसल के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हुए
Exchanging views with King Faisal of Saudi Arabia



योगोस्लाविया में मार्शल टिटो के साथ
With President Tito in Yugoslavia



मिश्र के राष्ट्रपति जमाल अब्दुल नासर के साथ

With the Egyptian President Col. Gamal Abdel Nasser



राष्ट्रपति नासर के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हुए
Exchanging views with President Nasser



हवाई अड्डे पर शाह फैसल के साथ
Being received by King Faisal at airport



विदेशी अतिथियों का स्वागत करते हुए
Receiving the foreign guests



कनाडा के गणमान्य व्यक्तियों का स्वागत करते हुए
Receiving Canadian dignitaries



अतिथि सत्कार करते हुए
Entertaining the guests at home



योगोस्लाविया में
In Yugoslavia



योगोस्लाविया में मार्शल टीटो के साथ सेना गार्ड का निरीक्षण करते हुए
Inspecting the guard of honour with Marashal Tito in Yugoslavia



अम्मान में जोर्डन के शाह हुसैन के साथ
With King Husain of Jordan in Amman



राष्ट्रपति नासर और मिश्र के अन्य नेताओं के साथ
With President Nasser and other Egyptian leaders



श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए
Laying the floral wreath



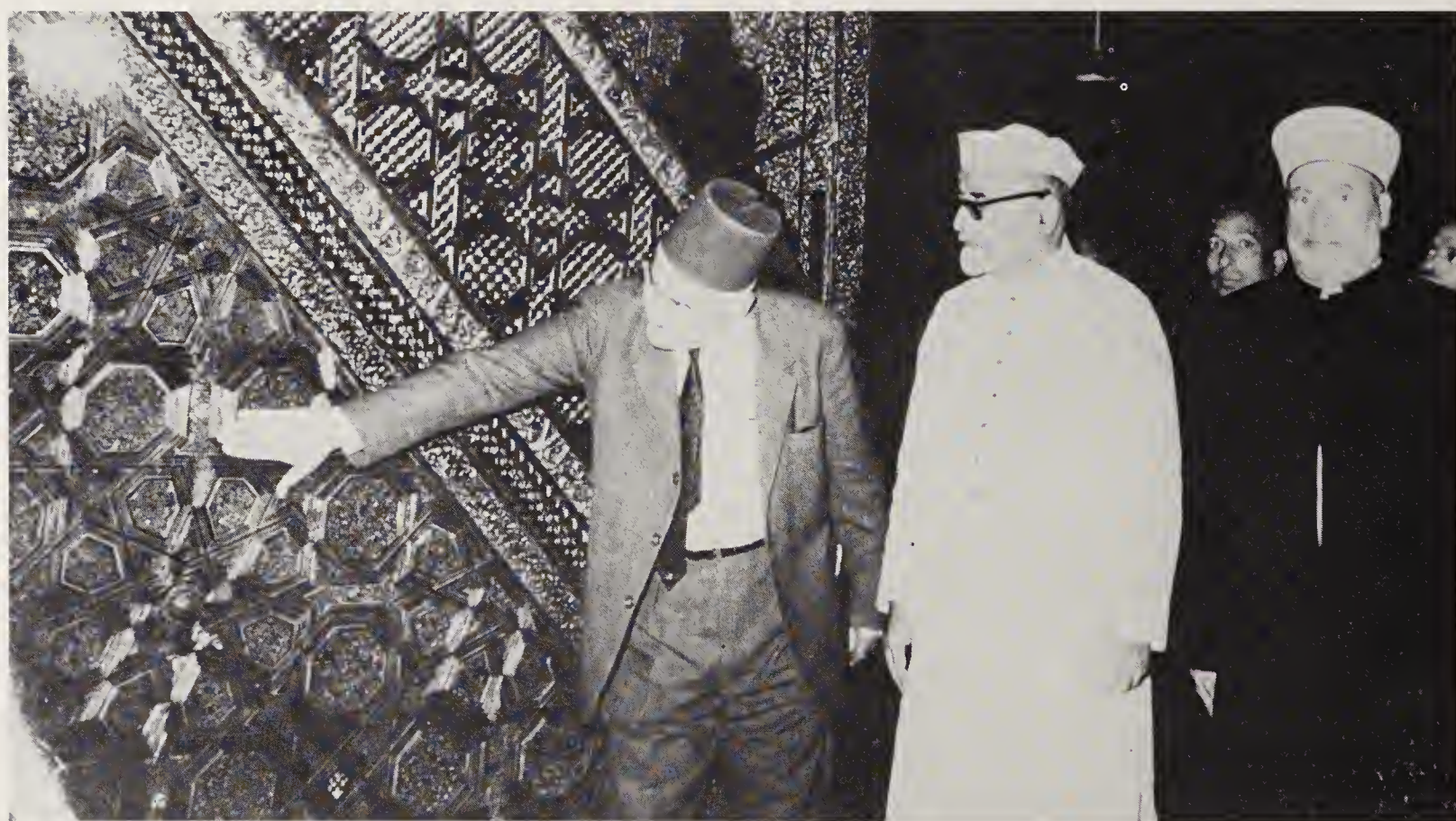
राष्ट्रपति भवन में पश्चिमी एशियाई देशों के राजदूतों के साथ
Meeting the ambassadors of West Asian Countries at Rashtrapati Bhavan



काठमांडू में नेपाल के महाराजा महेन्द्र के साथ
With King Mahendra of Nepal in Kathmandu



जोर्डन के शाह हुसैन के साथ एक राजकीय भोज में
At a banquet with King Husain of Jordan



अल्जीरिया की मस्जिद के पत्थर पर नक्काशी की प्रशंसा करते हुए
Admiring the stone carvings in an Algerian Mosque



नेपाल में महाराजा महेन्द्र के साथ
With King Mahendra of Nepal



एक अरब नेता के साथ
With an Arab leader



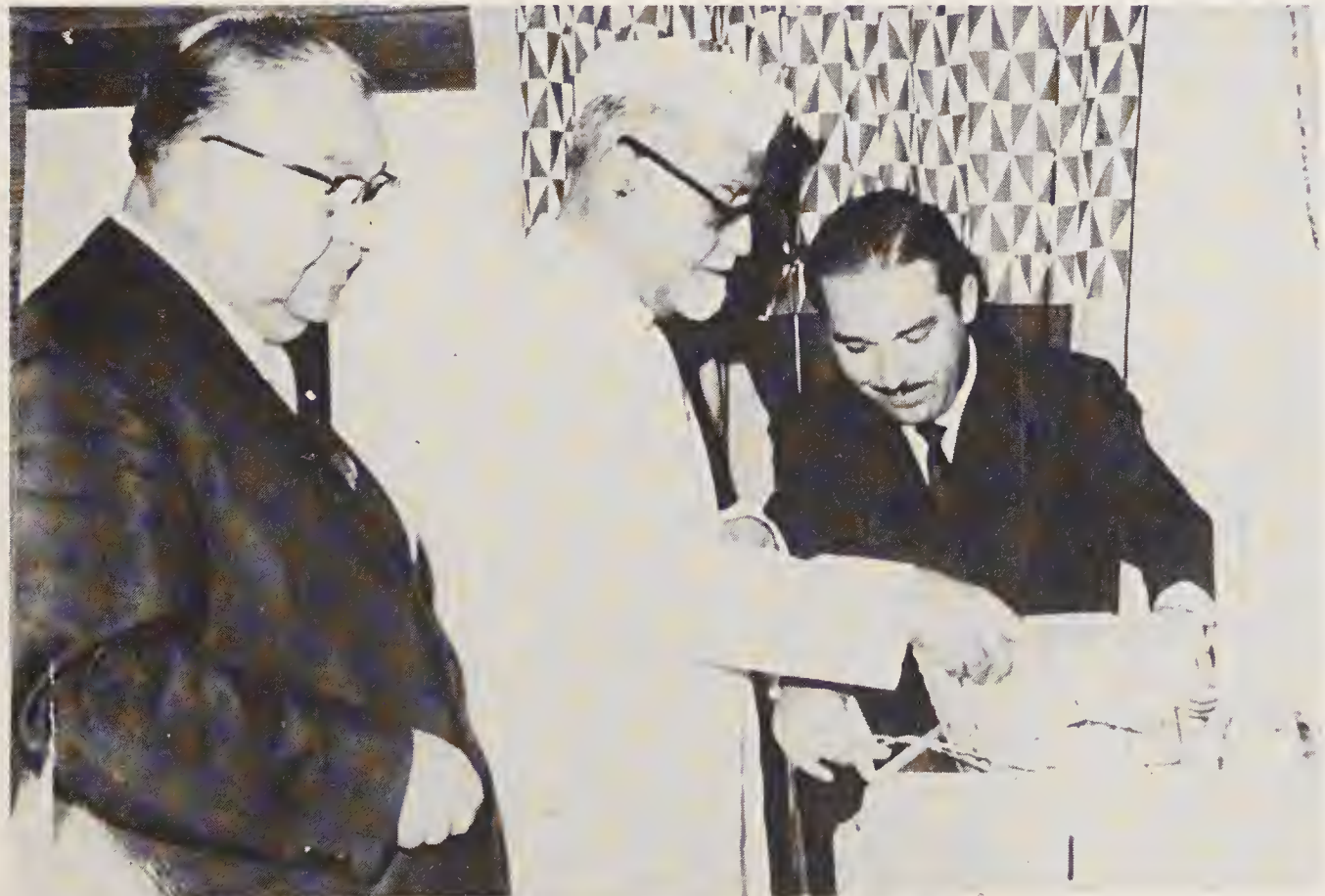
मलेशिया की राजकीय यात्रा पर
Visit to Malaysia



नेपाल में
In Nepal



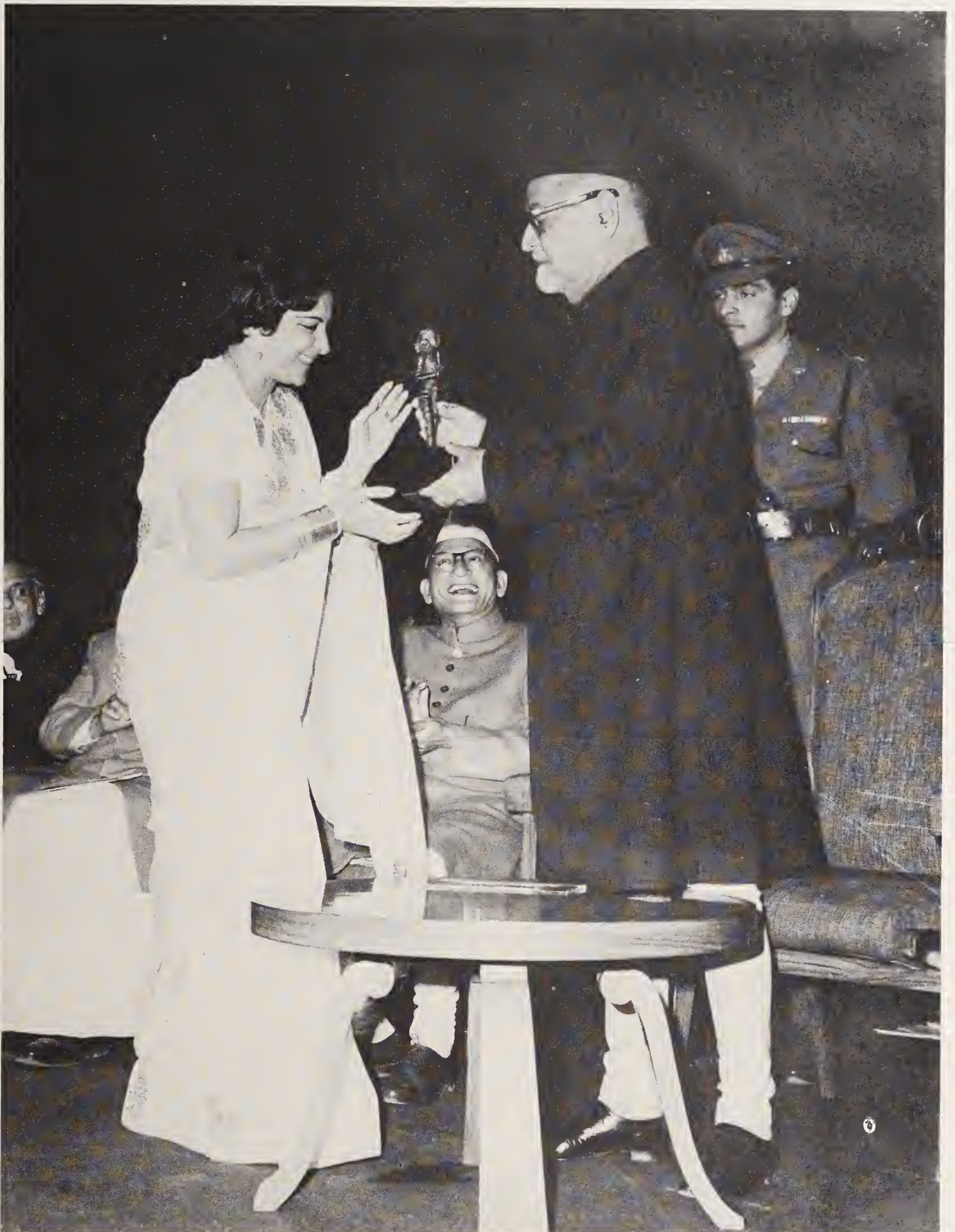
एक छायाचित्र प्रदर्शनी में
At a photographic Exhibition



एक दुर्लभ पाण्डुलिपि की प्रशंसा करते हुए
Admiring a rare manuscript

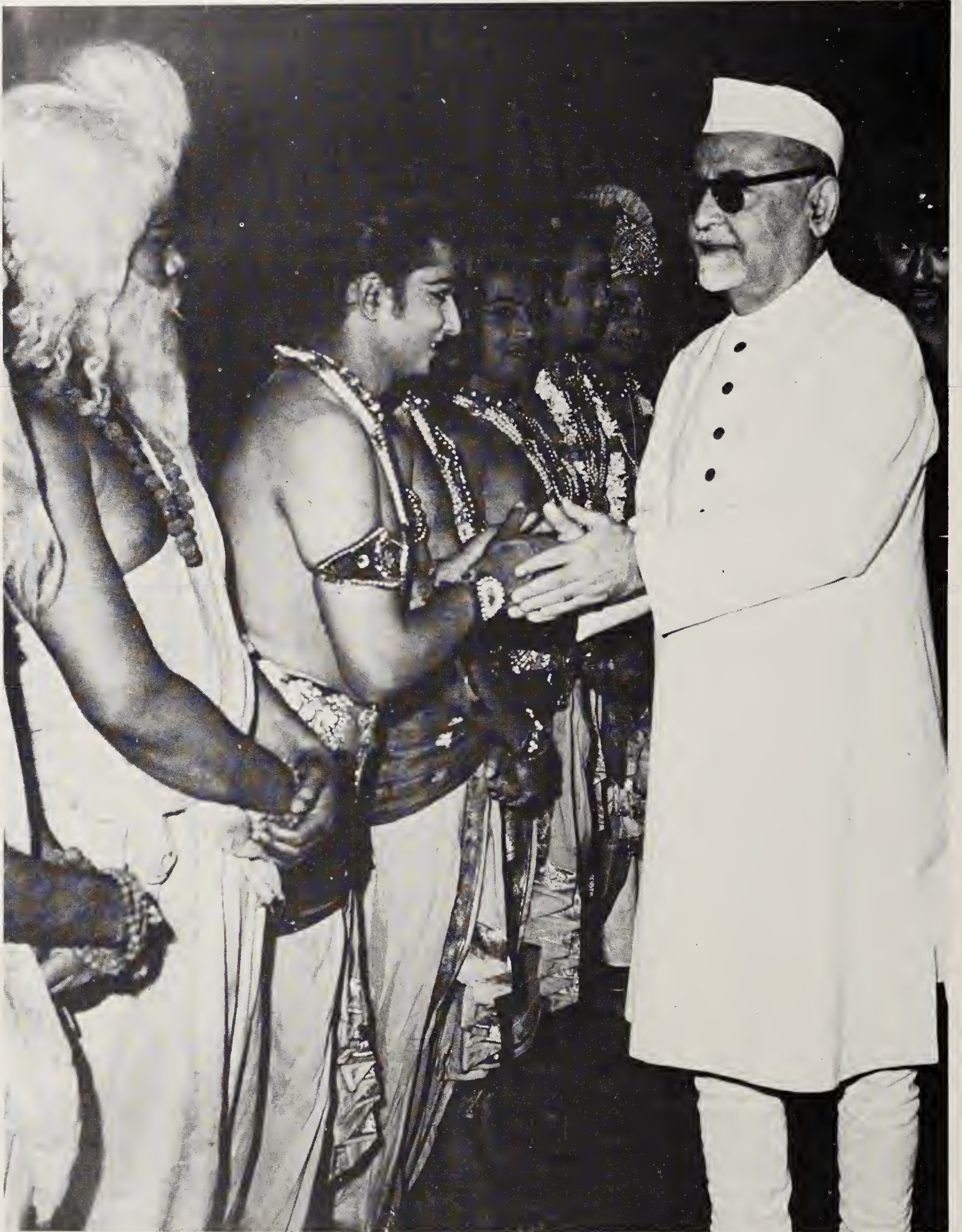


सत्यजीत रे को पुरस्कृत करते हुए
Giving award to Satyajit Ray



पुरस्कार वितरण

Giving away the award



नम्रता की प्रति मूर्ति
An example of humbleness



अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना हेतु स्वर्गीय मार्टिन लूथर किंग की पत्नी श्रीमति कोरेटा किंग को जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार देते हुए
Giving away the Jawaharlal Nehru Award for International goodwill to Mrs. Coretta King , wife of Martin Luther King



नेपाल में सम्मान
Being honoured in Nepal



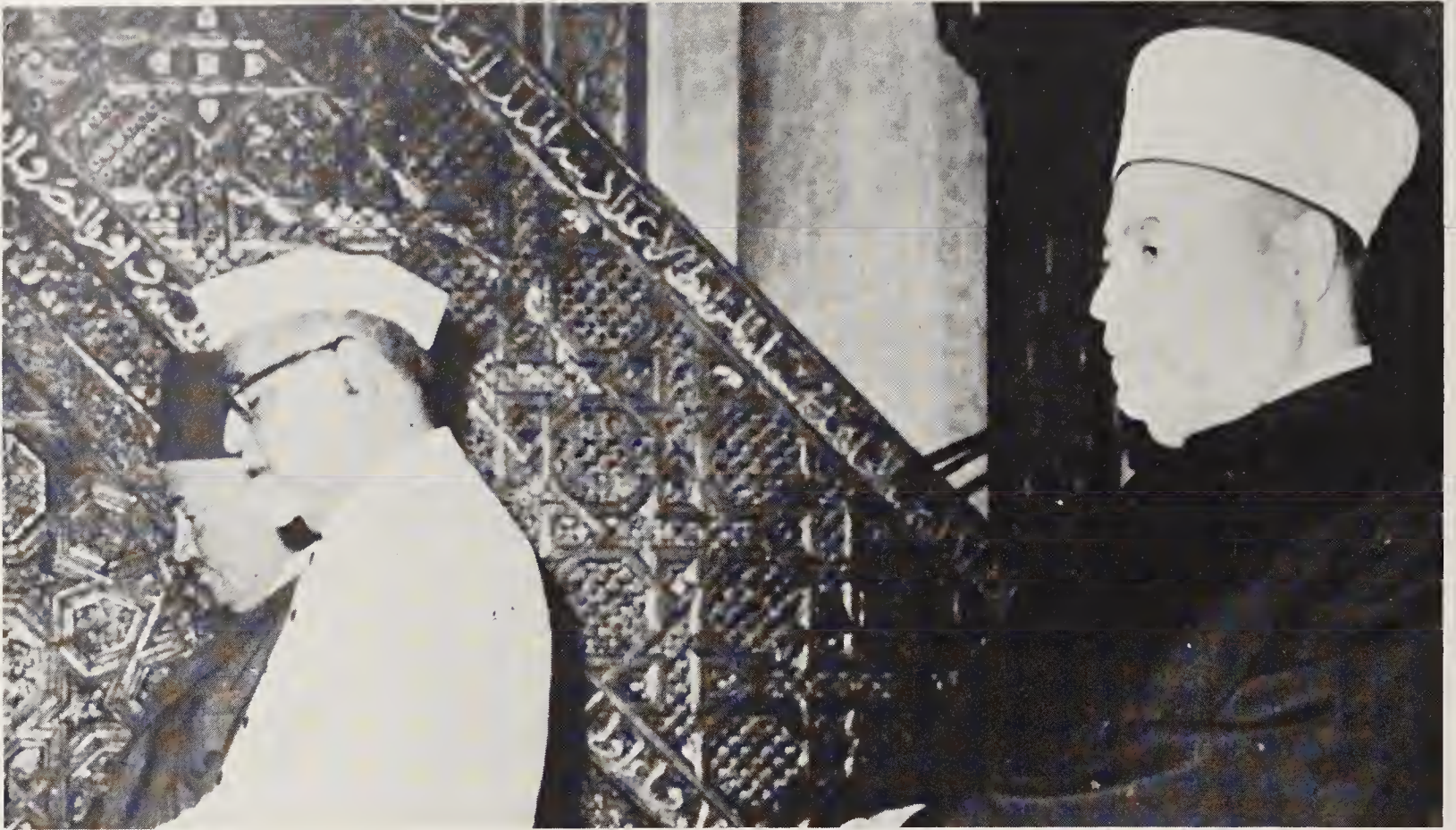
सोवियत संघ की राजकीय यात्रा पर
Visit to Russia



मलेशिया की राजकीय यात्रा पर
Visit to Malaysia



सूडान की राजकीय यात्रा पर
Visit to Sudan



अल्जीरिया की विशाल मस्जिद में नमाज़ अदा करते हुए
Offering Namaz at the Grand Mosque in Algeria



कभी न टूटने वाली चिरनिद्रा
In sleep that know no awakening



ज़ाकिर साहब के निधन के पश्चात् चर्च में श्रद्धांजलि
Memorial services at the church after Zakir Saheb's death



ज़ाकिर हुसैन के निधन पर शाकाकुल शास्त्री परिवार
Shastri's family condoling the death of Zakir Husain



चिरनिद्रामग्न
In eternal sleep



